ख़ाँजहाँ

संपादक

"स्मृति"

सूचना

बाहर के—विशेषकर नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ के—ग्रंथ हमारे यहाँ बहुत किफ़ायत से मिलेंगे। शीघ्र मँगाइए।

हमारा पता—

त्रिलोकनाथ भार्गव बी० ए०
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का तीसरा पुष्प

ख़ाँजहाँ

[बँगला के ख्यातनामा नाटककार श्रीक्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद के सुप्रसिद्ध नाटक के आधार पर]

लेखक

रूपनारायण पांडेय

एक दिन मरना ही होगा, यह जरूरी बात है ;
फिर न क्यों वह मौत हो, जिसमें बड़ाई-मान है ?

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १=)] १९१८ [सादी ॥।=)

प्रकाशक
छोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी० एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
मनोहरलाल भार्गव बी० ए०
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला के नियम

१—लेखकों के लिये

१. इस पुस्तकमाला का उद्देश है हिंदी-साहित्य को उच्चकोटि के ग्रंथ-रत्नों से अलंकृत, मातृ-भाषा के गौरव की वृद्धि एवं उसके सब अंगों की पुष्टि करना।

२. अतएव इस पुस्तकमाला के लिये लेखक किसी भी विषय का ग्रंथ लिख सकते हैं। हाँ, ध्यान केवल इस बात पर रखना चाहिए कि जो ग्रंथ वे इसके लिये लिखें वे भाषा और भाव दोनों बातों में उच्चकोटि के हों।

३. इस पुस्तकमाला की पुस्तकें टाइप, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सभी बातों में दर्शनीय एवं सुंदर जिल्द और चित्रों से विभूषित होती हैं। अतएव जो लेखक अपनी पुस्तकें सर्वांग सुंदर प्रकाशित करवाना चाहते हैं, वे हमीं से पत्र-व्यवहार करें और हमारे कार्यालय से ही अपनी पुस्तकें प्रकाशित करवावें।

४. इस पुस्तकमाला की पुस्तकों में समर्पण-पृष्ठ न रहेगा।

५. इस पुस्तकमाला के लिये जो पुस्तक स्वीकृत की जायगी उसे घटाने-बढ़ाने एवं परिवर्तन करने का अधिकार संपादक को रहेगा।

६. जो लेखक पुरस्कार लेना चाहेंगे, उन्हें पुरस्कार भी प्रसन्नतापूर्वक दिया जायगा जो लेखक के परिश्रम, पुस्तक की उत्तमता तथा उपयोगिता, बिक्री की संभावना आदि बातों पर निर्भर रहेगा।

२—स्थायी ग्राहकों के लिये

१. हमारी पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहक बनने का प्रवेश शुल्क (Fee) चार आने [।)] मात्र है। जो इसे भेज देंगे, उनका नाम स्थायी ग्राहकों की नामावली में लिख लिया जायगा।

२. स्थायी ग्राहकों को माला की प्रत्येक पुस्तक १५) प्रति सैकड़ा कमीशन काटकर वी० पी० द्वारा भेजी जायगी।

३. पुस्तकें प्रकाशित होते ही—१० रोज़ पहले मूल्य आदि की सूचना दे देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को भेज दी जायँगी। जहाँ तक हो सकेगा, ३-४ पुस्तकें एक साथ भेजी जायँगी, जिसमें डाक-ख़र्च कम पड़े।

४. जो मनुष्य हमारे १२ स्थायी ग्राहक बनावेंगे और उनके प्रवेश शुल्क के $\frac{४ \times १२}{१६}$=३ रुपए हमारे पास भेज देंगे, उनके पास हम अपनी माला की प्रत्येक पुस्तक तब तक "मुफ़्त" भेजते रहेंगे, जब तक उक्त १२ सज्जन हमारे स्थायी ग्राहक बने रहेंगे।

५. जो राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार अथवा अन्य सज्जन १००) या इससे अधिक रुपए हमारे कार्यालय को प्रदान करेंगे वे हमारे माननीय ग्राहक समझे जायँगे और उन्हें माला की प्रथम २०० पुस्तकें, जैसे जैसे प्रकाशित होती जायँगी, उपहार-स्वरूप दी जायँगी।

अब तक इसमें ये ग्रंथ निकल चुके हैं—

हृदय-तरंग—नव्य साहित्य-सेवी पंडित दुलारेलालजी भार्गव रचित। हृदय की भावनाओं का मनोहारी विज्ञान। यू० पी० और सी० पी० के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत। इस पुस्तक का हिंदी-संसार ने इतना आदर किया है कि ७-८ महीने में ही इसकी दूसरी आवृत्ति निकालनी पड़ी! अवश्य पढ़िए। मूल्य सजिल्द ।=)॥ ; सादी ।)

किशोरावस्था—हिंदी के सुयोग्य लेखक श्रीयुत गोपालनारायणजी सेन सिंह बी० ए० लिखित। नवयुवकों का एक मात्र सखा; हिंदी में अपने ढंग का पहला और अद्वितीय ग्रंथ। प्रयाग के प्रसिद्ध डाक्टर रणजीतसिंह कृत भूमिका सहित। मूल्य सजिल्द ॥=) ; सादी ॥)

खाँजहाँ—पुस्तक हाथ ही में है।

स्फुट ग्रंथ

सुख तथा सफलता—सुप्रसिद्ध अँगरेज़ लेखक महात्मा जेम्स ऐलन की एक बढ़िया पुस्तक का अनुवाद। अनुवादक हैं—श्रीत्रिलोकनाथ भार्गव बी० ए०। इस

पुस्तक को सुख तथा सफलता प्राप्त करने का साधन समझिए। मूल्य सजिल्द ।-) ; सादी ॥)

सुघड़ चमेली—लेखक, तफ़रीह आदि पत्रों के भूतपूर्व संपादक पंडित रामजीदास भार्गव। हिंदी एवं उर्दू-संसार भली भाँति जानता है कि आप बालोपयोगी पुस्तकें लिखने में कैसे पटु हैं। आप इस पुस्तक को अपनी लड़कियों को पढ़ाइए और फिर देखिए कि वे चमेली की तरह कैसी सुघड़ हो जाती हैं! मूल्य =)

भगिनी-भूषण—बा० गोपालनारायण सेन सिंह बी० ए० लिखित। यह पुस्तक बच्चों को पढ़ाने लायक़ है। इसमें छोटी छोटी कहानियों के बहाने बच्चों को बहुत सी शिक्षाएँ दी गई हैं। मूल्य ≈)

पत्रांजलि—(छप रही है; शीघ्र प्रकाशित होगी) स्त्री-पाठ्य पुस्तकों के प्रसिद्ध लेखक श्रीसतीशचंद्र चक्रवर्ती के बँगला 'स्वामी-स्त्रीर-पत्र' का हिंदी-रूपांतर। इसकी रचना पंडित कात्यायनीदत्त त्रिवेदी ने की है। हमारी राय है कि प्रत्येक पढ़ी-लिखी नवविवाहिता स्त्री इस पुस्तक को अवश्य पढ़े और इसके अमृतमय उपदेशों से लाभ उठावे। मूल्य लगभग ।=)

पत्र-व्यवहार करने का पता है—

श्रीत्रिलोकनाथ भार्गव बी० ए०

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

भूमिका

ख़ाँजहाँ ऐतिहासिक नाटक है। मालवा दिल्ली का एक सूबा था। वहाँ के स्वाभिमानी वीर ख़ाँजहाँ का महत्त्व दिखाने के लिये इस नाटक की रचना हुई है। इतिहास में ख़ाँजहाँ का बुलाए जाकर दिल्ली आना, दिल्ली में तत्कालीन बादशाह शाहजहाँ के द्वारा अपमान होने का उद्योग देखकर वहाँ से ख़ाँजहाँ का बेदाग़ निकल जाना आदि बातों का उल्लेख है। उन्हीं बातों के आधार पर, कल्पना से सहायता लेकर, एक प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् बाबू क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद ने बँगला में यह नाटक लिखा है। इस नाटक की गिनती बँगला के बहुत ही उच्चकोटि के नाटकों में की जाती है। यह बँगला नाट्य-शालाओं में कई बार खेला जा चुका है और लोगों ने इसका आदर भी किया है। उसी बँगला नाटक के आधार पर, हिंदी-रंगमंच पर खेलने के योग्य बनाने के अभिप्राय से, कुछ न्यूनाधिकता करके, यह प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। आशा है, यह स्वाभिमान के भावों से भरा नाटक यहाँ के लोगों को रुचिकर और लाभदायक प्रतीत होगा।

इस नाटक में मूल लेखक ने दो नवीन पात्रों की कल्पना की है—एक दादाजी, दूसरी सोफ़िया । नाटकों में प्रायः हास्यरस की अवतारणा आवश्यक हुआ करती है। वीर और करुणारस के दृश्य देखकर पाठक जब कुछ ऊबने लगते हैं तब उनके मनोरंजन और विश्राम के लिये हास्यरस की अवतारणा ज़रूरी होती है । पुराने नाटकों में हास्य के लिये विदूषक नाम से एक विशेष पात्र की अवतारणा देखी जाती है । इस नाटक में नाटककार ने शाहजहाँ के दरबार में कोई विदूषक न रखकर महाबतख़ाँ के मामा दादाजी को रखकर उन्हीं से इस अभाव की पूर्ति की है। बंगालियों की सामाजिक प्रथा के अनुसार दादा और पोते-पोती में हँसी होना बुरा नहीं समझा जाता। उसी प्रथा के अनुसार इस नाटक में भी जगह जगह पर दादा और पोती (दादाजी और सोफ़िया) की बातचीत में विशुद्ध हास्यरस का प्रयोग किया गया है ।इस हिंदी-ग्रंथ में, उस हास्य के संबंध में, औचित्य की सीमा पर ध्यान दिया गया है ।

यह दादा-पोती की हँसी ऐसी है कि वह बुरी नहीं जान पड़ती और साथ ही निःसार और व्यर्थ नहीं है। बाज़ बाज़ बात दादाजी ने जो हँसी के तौर पर कही है उसमें बहुत ही गूढ़ भाव भरे हैं । यह हँसी उपदेश से भी ख़ाली नहीं है। हास्यरस की मात्रा अधिक न होने पर

भी, जितनी है उतनी विशुद्ध मनोरंजन के लिये यथेष्ट है। दादाजी का चरित्र सरलता और उच्च भावों से परिपूर्ण है। वह इतने खरे थे कि अपने सगे भांजे महाबतख़ाँ के अनुचित कार्य को न देख सके। जब महाबतख़ाँ ने ख़ाँजहाँ लोदी से सदा शत्रुता रखने का प्रण किया, तब उन्होंने घटना-स्थल पर पहुँचकर महाबतख़ाँ को समझाने की कोशिश की। महाबतख़ाँ ने जब उनका कहा नहीं माना और अपमान किया तब स्वाभिमानी दादाजी उसे नहीं सह सके— धर्मनिष्ठ दादाजी धर्मभ्रष्ट भांजे को छोड़कर चल दिए।

दूसरा नाटककार की कल्पना का मनोहर और निःस्वार्थ प्रेम का आदर्श चरित्र सोफ़िया है। सोफ़िया के चरित्र को अंकित करने में नाटककार ने मनुष्य-हृदय की वृत्तियों के सूक्ष्मज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया है। सोफ़िया महाबतख़ाँ की लड़की थी। टाडसाहब ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि महाबतख़ा उदयपुर के राना के भाई सगर जी का पुत्र था जो पीछे से मुसलमान होकर महाबतख़ाँ कहलाया। पर मुंशी देवीप्रसाद जी और तोहफ़एराजस्थान के लेखक का कहना है कि वह क़ाबुल के रहनेवाले ग़यूर-बेग का लड़का था और उसका असली नाम ज़मानहबेग था। जहाँगीर ने बादशाह होने पर उसको महाबतख़ाँ का ख़िताब दिया *। जो कुछ हो, नाटककार ने टाड-

* देखो तुज़क जहाँगीरी व इक़बालनामह, जिल्द अौवल।

साहब की सम्मति के अनुसार महाबतख़ाँ को सिसोदिया कुल में उत्पन्न ही माना है।

सोफ़िया पहले जातीयता के भाव से शून्य थी। शाहज़ादे तक उसे पाने के लिये लालायित थे। इसी बीच में एक दिन उसने अपने पिता के पास आए हुए विदेशी नारायणराव को देखा। नारायणराव ने पहली भेंट में और दूसरी भेंट में भी सोफ़िया के उस मनो-मोहन मुख की ओर आँख उठाकर नहीं देखा। इससे सोफ़िया को विस्मय हुआ, क्षोभ हुआ और कौतूहल भी हुआ। नारायणराव के इस बरताव से उसके इस स्त्रीस्वभावसुलभ भाव को चोट पहुँची कि मैं रूपवती हूँ और मेरा सौंदर्य किसी को भी चकित और मोहित बनाए बिना नहीं रह सकता। नारायणराव से बातचीत होने पर उसे पहले पहल हिंदू-जाति का यह महत्त्व मालूम हुआ कि हिंदू—विशेषकर ब्राह्मण—सब से बढ़कर धर्म ही को समझते हैं; धर्म के लिये वे कठिन से कठिन स्वार्थ-त्याग के लिये अनायास तैयार हो जा सकते हैं। यहाँ पर सोफ़िया इसके लिये तैयार हो गई कि मैं ब्राह्मण को अपने इस प्रण से डिगाकर छोड़ूँगी।

फिर जब महाबतख़ाँ अपमानित अतिथि का पीछा करने पर तैयार हुए तब कोमल और सरल हृदयवाली बालिका को पिता के इस बरताव से खेद पहुँचा। उधर

उसे नारायणराव के हृदय के महत्त्व का परिचय मिला। नारायणराव लोदी से अपने बाप का बदला लेने आया था। पर यहाँ अपने पहले के मालिक को विपत्ति में देखकर ब्राह्मण-कुमार से नहीं रहा गया। वह लोदी से बदला लेने के बदले उसको सहायता पहुँचाने के लिये तैयार हो गया। इससे सोफ़िया को मालूम हुआ कि नारायणराव हृदयहीन नहीं हैं; उनके विचार ऊँचे हैं। सोफ़िया को डाह के बदले अब नारायणराव पर श्रद्धा हो चली। अंत को नारायणराव का स्नेह पाकर बालक-वेषधारिणी सोफ़िया के हृदय में वह श्रद्धा का भाव प्रेम के रूप में बदल गया। स्थानाभाव से हरएक स्थल को उद्धृत करके इन बातों को दिखाना असंभव है। पाठक नाटक को आद्योपांत पढ़कर इस निःस्वार्थ प्रेम का पूरा परिचय पा सकेंगे।

सोफ़िया के हृदय में हिंदू-जाति के विचारों का महत्त्व अंकित हो गया। उसे अपने शरीर में हिंदू-रक्त के होने का गर्व हुआ। वह भी हिंदुओं के विपन्न की सहायता करने के सिद्धांत को मानकर लोदी को सहायता पहुँचाने के काम में लग गई और उसने जितनी लोदी की सहायता की उतनी नारायणराव भी नहीं कर सके। सोफ़िया के जीवन का अंतिम भाग ऐसा उज्ज्वल, मनोहर और दिव्य है कि वह किसी भी पाठक के हृदय पर

गहरा असर डाले बिना नहीं रह सकता। कट्टर हिंदू दादाजी को, जो एक समय ब्राह्मण-कुमार का धर्म बचाने के ख़याल से यह चाहते थे कि सोफ़िया और नारायणराव एकत्र न हों, अंत को उसी सोफ़िया के दिव्य चरित्र और निःस्वार्थ प्रेम के आगे सिर झुकाकर अपनी भूल क़बूल करनी पड़ी। सोफ़िया का चरित्र ऐसा है कि उसे जितनी बार पढ़िए, ध्यान देकर देखिए, जी नहीं भरेगा। सोफ़िया के चरित्र का विश्लेषण थोड़े में नहीं हो सकता। यह तो केवल दिग्दर्शनमात्र करा दिया गया है।

इस नाटक के प्रायः सब पात्रों के चरित्र प्रभाव डालने-वाले ढंग से अंकित हुए हैं। ख़ाँजहाँ का आत्माभिमान और बहादुरी, गुलनार और रज़िया का पति और पिता के मान की रक्षा के लिये आत्मोत्सर्ग, बालक अजमतख़ाँ की पितृभक्ति और साहस, ख़ुदादाद और दरियाख़ाँ की प्रभुभक्ति, हिम्मत और मरदानगी किसके मन को न मोहित कर लेगी ? ये सब सद्गुण प्राचीन राजपूतों की जाति में ही मिल सकते हैं।

साथ ही शाहजहाँ का कुटिल व्यवहार भी ऐसा है कि उससे मुग़लों की कूटनीति का अच्छा पता लगता है। यद्यपि शाहजहाँ अपनी न्यायपरता, नेकचलनी और रिआयापरवरी के लिये प्रसिद्ध है, वह औरंगज़ेब की तरह क्रूर न था, तो भी उसमें इतनी कूटनीति थी।

परंतु उसके सच्चे होने में कोई संदेह नहीं, क्योंकि उसने अपनी ग़लती को मान लिया था। पर तो भी हिंदुओं की सी उदारता दिखाकर वह अपमानित वीर ख़ाँजहाँ को अपना मित्र बनाने का साहस न कर सका। इतना कर सकता तो वह अवश्य अपने पाप का प्रायश्चित्त कर डालता और अकारण ऐसी शोचनीय हत्याओं के पाप का भागी न बनता।

१८।३।१८ रूपनारायण पांडेय

नाटक के पात्र

—:०:—

पुरुष

शाहजहाँ	...	...	दिल्ली के बादशाह
ख़ाँजहाँ लोदी	...	...	मालवे के सूबेदार
अजमतख़ाँ लोदी	...	...	ख़ाँजहाँ का पुत्र
नारायणरावं	...	...	ख़ाँजहाँ के भूतपूर्व दीवान का लड़का
महाबतख़ाँ	...	...	मुग़लों का सेनापति
दादाजी	...	...	महाबतख़ाँ का मामा
आजफ़	...	...	सम्राट् का वज़ीर
ख़ुदादाद, दरियाख़ाँ	...	...	ख़ाँजहाँ लोदी के सेनापति

उमराव लोग, मुग़लसेना, पठानसेना, भीलसेना, चोपदार, भृत्य, जासूस आदि

स्त्रियाँ

गुलनार	...	...	ख़ाँजहाँ की बेगम
रज़िया	...	...	ख़ाँजहाँ की लड़की
सोफ़िया	...	...	महाबतख़ाँ की लड़की

सोफ़िया की सखियाँ, बाँदी इत्यादि

ख़ाँजहाँ

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—बाग़

सोफ़िया और महावत ख़ाँ

सोफ़िया—हाँ पिताजी, आज एकाएक क़िले में तोपों की आवाज़ क्यों हो रही है ?

महावत—मालवे के सूबेदार ख़ाँजहाँ लोदी आगरे में आ रहे हैं।

सोफ़ि०—वह तो आपके एक शत्रु हैं, क्यों न ?

महा०—एक समय था, जब वे मेरे बड़े गहरे मित्र थे। जिस दिन से मैंने शाहजहाँ का पक्ष लिया है, उसी दिन से वे मेरे शत्रु हो गए हैं।

सोफ़ि०—तो अब फिर उनसे मित्रता हो जायगी ?

महा०—शाहजहाँ के साथ मित्रता हो सकती है, लेकिन मेरे साथ अब नहीं हो सकती।

सोफ़ि०—क्यों पिताजी ?

महा०—स्नेह का बंधन एक बार टूट जाने पर फिर नहीं जुड़ता—गाँठ पड़ जाती है। फिर मित्रता होने पर भी वह बात नहीं आती।

सोफ़ि०—अभी तो आपने कहा था कि बादशाह के साथ मित्रता हो सकती है।

महा०—बादशाह के साथ उनकी मित्रता होगी लाचारी से। वहाँ परस्पर स्वार्थ का संबंध है। मेरे साथ जो उनकी मित्रता थी, उसमें स्वार्थ का लेश न था।

सोफ़ि०—बादशाह के साथ उनकी शत्रुता क्यों है ?

महा०—सम्राट् यह स्वीकार नहीं करना चाहते कि वह राजवंश में उत्पन्न हैं। बादशाह ने यही प्रचार कर रक्खा है कि मालवे के नवाब ख़ाँजहाँ का जन्म नीच वंश में हुआ है। इसी से बादशाह पर नवाब को बेहद क्रोध है। मैंने बादशाह का पक्ष लिया है; इससे मुझपर भी वह सख़्त नाराज हैं।

सोफ़ि०—उनका नाराज होना जा है।

महा०—क्या करूँ, साम्राज्य की अवस्था देखकर मुझे शाहजहाँ का पक्ष लेना पड़ा !

सोफ़ि०—आप दोनों मित्रों का क्या फिर मिलन नहीं हो सकता ?

महा०—मुँह का मेल हो सकता है; मगर उनके

मिजाज़ को मैं जैसा जानता हूँ उससे तो ऐसा मेल होना भी असंभव ही जान पड़ता है। नवाब बड़े ही अभिमानी हैं, अद्वितीय वीर हैं, युद्ध में किसी को भी न डरनेवाले हैं। केवल एक अभिमान ही उनकी उन्नति में बाधा है। उन्हीं के भले के लिये, उनकी इच्छा के विरुद्ध हम लोगों की सहायता करने के कारण उन्होंने अपने सदा के प्यारे और हितैषी हिंदू दीवान को जवाब दे दिया और अपने देश से बाहर निकाल दिया!

नेपथ्य में—मत जाओ। भागो भागो।

महा०—बेटी, यहाँ से हट तो जाओ। कोई आदमी पहरेदार का कहा न मान कर इधर ही आ रहा है। पागल सा देख पड़ता है। जल्द जाओ, इस कुंज की आड़ में छिप रहो।

(सोफ़िया का प्रस्थान)

(नारायणराव का प्रवेश)

नारा०—सेनापति, सलाम।

महा०—आप कौन हैं?

नारा०—नहीं पहचाना?

महा०—नहीं।

नारा०—मैं मालवे के नवाब के भूतपूर्व दीवान का लड़का हूँ।

महा०—कौन, नारायणराव?

नारा०—जी हाँ।

महा०—तुम्हारी यह आज कैसी हालत है ?

नारा०—सब हाल तो आप सुन ही चुके हैं।

महा०—तुम्हारे पिता ?

नारा०—वह अब इस संसार में नहीं हैं।

महा०—नहीं हैं ?

नारा०—अपमान, मानसिक संताप, दारिद्र्य आदि से कष्ट पाते हुए उन्होंने वन में प्राण त्याग दिए।

महा०—अफ़सोस ! बादशाह सलामत ने तो उन्हें जागीर देकर सम्मानित करने के लिये मेरे पास परवाना भेजा है।

नारा०—अब आप जागीर किसे देंगे। पिताजी ने वन में एक प्रकार से भूखों मर कर ही जान दे दी है।

महा०—मूर्ख घमंडी नवाब, तुम समझ नहीं सके। भैया, तुम्हारे पिता बड़े ही होशियार और राजनीति के जाननेवाले थे। वह समझ गए थे, समझ कर ही उन्होंने शाहजहाँ को राह दे दी थी। आगरे के सिंहासन पर अधिकार करने के लिये शाहजहाँ आ रहे थे। दख़ल तो शाहजहाँ कर ही लेते। मगर हाँ, जो तुम्हारे पिता शाहजहाँ को राह न दे देते तो बिना खूनख़राबी के जो काम सिद्ध हो गया है वह काम सिद्ध करने में बहुत रक्तपात करना पड़ता।—मैंने तुम्हारे पिता को खोजने के

लिये लोगों को भेजा था। बादशाह भी ब्राह्मण को पुरस्कार और सम्मान देने के लिये बहुत व्याकुल थे। तुम आ गए, अच्छा ही हुआ। चलो, तुमको बादशाह के पास ले चलूँ। वह तुम्हें देखेंगे तो गले से लगा लेंगे।

नारा०—मैं बादशाह से मुलाक़ात नहीं करूँगा।

महा०—यह क्या कहते हो ? मुलाक़ात क्यों नहीं करोगे ? तुम्हारे पिता को जो जागीर बादशाह ने दी थी उसे न लोगे ?

नारा०—नहीं, मैं जागीर लेने के लिये नहीं आया। मेरे पिता बादशाह का काम करके फ़क़ीर की तरह निकाले जाकर वन में मरे हैं—मैं सुख भोगने के लिये जागीर न लूँगा। बादशाह से भेंट भी नहीं करूँगा।

महा०—तो फिर मेरे पास क्या करने आए हो ?

नारा०—मैं ख़ाँजहाँ लोदी से पिता के अपमान का बदला चुकाने आया हूँ। मरने से पहले पिताजी मेरे मन का भाव समझ गए थे। इसी से वह मुझसे इरादा पक्का करने के पहले आपसे उपदेश लेने के लिये कह गए हैं। इसी कारण मैं आपसे भेंट करने आया हूँ।

महा०—अच्छी बात है, जागीर न लो, बादशाह की मन्सबदारी का ओहदा क़बूल करो।

नारा०—दोहाई है जनाब, यह अनुरोध न करिएगा।

महा०—मेरे आगे तुम 'नाहीं' कर रहे हो; लेकिन

बादशाह जब तुमसे लेने के लिये कहेंगे तब तुम 'नाहीं' न कर सकोगे।

नारा०—मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि बादशाह से मुलाक़ात न करूँगा।

महा०—मैं तुम्हें मुलाक़ात करने के लिये विवश करूँगा। तुम लोगों का पता लगाने के लिये बादशाह ने मुझे आज्ञा दे रक्खी है। जब घर बैठे पता लग गया है, तब बादशाह से भेंट कराए बिना तुमको छोड़ नहीं सकता। तुम मेरे साथ आओ।

नारा०—कहाँ चलूँ जनाब ?

महा०—मेरे बाग़ में आज विश्राम करो। कल तुम्हें बादशाह के दरबार में ले चलूँगा।

नारा०—जनाब, मुझे माफ़ कीजिए; मैं आपके यहाँ मेहमानदारी क़बूल नहीं कर सकता।

महा०—समझ गया। मैं तो अब राजपूत नहीं, मुसल्मान हूँ। ब्राह्मण का सत्कार करने के अधिकार को मैंने खुद गँवा दिया है। कोई है ? (एक पहरेदार का प्रवेश) तुम नहीं—हिंदू चाहिए।

(पहरेदार का प्रस्थान)

नारा०—हिंदू पहरेदार की क्या ज़रूरत है ?

महा०—मैं अपने मामा दादाजी महाराज के पास तुमको भेजूँगा। वह निष्ठावान् हिंदू हैं।

नारा०—मुझे जगह बता दीजिए, पहरेदार की ज़रूरत क्या है ? मैं ख़ुद ही जाता हूँ ।

महा०—मुझे तुम्हें हाथ से छोड़ने का साहस नहीं होता ।

नारा०—तो फिर पहरेदार ही क्या करेगा ? जनाब, मैं अगर न रहना चाहूँ तो क्या आपका पहरेदार मुझे पकड़ कर रख सकेगा ?

महा०—अच्छी बात है । इसका भी इंतज़ाम करता हूँ कि तुम चाहो भी तो भाग कर न जा सको । तुम्हें स्त्री के पहरे में रक्खे देता हूँ ।—सोफ़िया !

नारा०—सोफ़िया कौन ?

महा०—सोफ़िया मेरी लड़की है । वही तुमको मेरे मामा के पास ले जायगी ।—सोफ़िया, लजाने की ज़रूरत नहीं है—यह अतिथि हैं । जल्द आओ ।

(सोफ़िया का प्रवेश)

नारा०—यह अन्याय आज्ञा न कीजिए जनाबआली ! मैं कहता हूँ, आपके मामा के घर जाकर ठहरूँगा ।

महा०—अच्छा, तो इस सामने के बाग़ को नाँघ कर बाग़ के पासवाले उस मकान में जाओ ।

(नारायण का प्रस्थान)

सोफ़ि०—क्या आज्ञा है पिताजी ?

महा०—अब कुछ ज़रूरत नहीं है । लेकिन तो भी

विश्वास नहीं है। जाओ तो बेटी, ख़बर ले लो। वह ब्राह्मण युवक तुम्हारे नाना के पास गया या नहीं।

सोफ़ि०—यह कौन हैं ?

महा०—यह पीछे मालूम हो जायगा, अभी उसके पीछे जाओ।

(महाबत का प्रस्थान)

सोफ़ि०—वही तो, यह ब्राह्मणयुवक कौन है ? मेरी तरफ़ आँख उठाकर देखा तक नहीं ! मेरे विचित्र रूप की छटा देखने के लिये चार चार शाहज़ादे ताक लगाए रहते हैं; लेकिन इस ब्राह्मण के बेटे ने मुझे देखा ही नहीं !

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—घर के सामने का हिस्सा

दादाजी

दादा०—(स्वगत) दिन-मुहूर्त देखे बिना घर से बाहर जाने का फल कहाँ जायगा ? क्यों देश छोड़ कर आगरे में मरने आया, कुछ समझ में नहीं आता। सारी दुनिया में उड़ आया, कोई बंधन नहीं हुआ, लेकिन अंत को आगरे में आकर पर बँधा लिए। क्यों आया ? भांजा था रानाप्रताप का भतीजा—सागरजी का बेटा, सो वह धर्म छोड़कर महाबतख़ाँ बन गया। मैं देखने आया और यहाँ फँस गया। अब तो यहाँ से निकलने का उपाय नहीं देख पड़ता। एक मुसलमानी के प्यार के आकर्षण में पड़कर मेरा भी हृदय कटी मछली की तरह बेचैन हो रहा है। सोफ़िया का स्नेह मुझे किसी तरह नहीं भूलता—यह बड़ी ही मुशकिल हुई।

(नारायण का प्रवेश)

नारा०—आपही का नाम दादाजी महाराज है ?

दादा०—ना बाबा।

नारा०—वह कहाँ हैं ?

दादा०—वह इस समय क़ब्र के भीतर न्यौला हो गए हैं।

नारा०—न्यौला हो गए हैं ! क्या उनका पीछा हो गया ?

दादा०—देह है। सिर्फ़ है ही नहीं, बहुत सी जगह पर दख़ल किए हुए है। हाँ, उन्होंने चेहरा भर अवश्य बदल दिया है।

नारा०—आपकी बात तो मेरी समझ में नहीं आती ! मैं दादाजी महाराज के यहाँ ठहरने आया हूँ। महाबत ख़ाँ ने मुझे उनके पास भेजा है।

दादा०—तुम कौन हो भाई ?

नारा०—मैं मरहठा ब्राह्मण हूँ। मैंने महाबतख़ाँ के यहाँ रहना स्वीकार नहीं किया; इसी से उन्होंने अपने मामा दादाजी के पास भेजा है।

दादा०—जब तुम महाबतख़ाँ के घर रहकर मेहमान-दारी नहीं क़बूल कर सकते, तब उनके मामा के घर कैसे अतिथि होओगे ?

नारा०—मैंने सुना है कि वह कट्टर हिंदू हैं।

दादा०—तुमने ग़लत सुना है; उन्हें स्पर्श-दोष हो गया है।

नारा०—आपकी बातचीत के ढंग से जान पड़ता है कि आपही दादाजी महाराज हैं।

दादा०—किसी समय था, इस समय तो दादूमियाँ हूँ।

नारा०—तो फिर मैं यहाँ भी अतिथि न हो सकूँगा ?

दादा०—अगर जाति का अभिमान रखना चाहो तो मैं तुमसे यहाँ रहने के लिये नहीं कह सकता। और अगर अभिमान न रखना चाहो तो आओ अतिथि, मुझे कृतार्थ करो।

नारा०—दादाजी महाराज, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। यहाँ रहने का साहस मुझसे न हो सकेगा।

दादा०—साहस न करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है।

नारा०—तो फिर आपको—

दादा०—क्या कह कर प्रणाम करूँ, यह सोच रहे हो ? मैं तो कह चुका भैया कि मैं अब दादाजी नहीं—दादूमियाँ हूँ।

नारा०—तो सलाम करके बिदा होऊँ।

दादा०—सलाम भैया, सलाम। (नारायणराव का प्रस्थान) महाबतख़ाँ ने ब्राह्मण के लड़के को मेरे पास अटका रखने के लिये भेजा है—अवश्य उसके जी में कोई बुरा इरादा है। इस सुंदर नौजवान के साथ अगर वह सुंदरी लड़की आवे और उसी मधुर स्वर में कुछ बातचीत करे तो शायद यह उसको छोड़े ही नहीं ! क्या ज़रूरत है ? क्यों ब्राह्मण के बेटे को अपने पास रखकर मैं उसके जातिभ्रष्ट होने का कारण बनूँ ? और उसे घर में रखने का मुझे अधिकार ही क्या है ? मैं

कौन हूँ ? मैं महाबतख़ाँ के अन्न से पल रहा हूँ—उसकी लड़की के प्यार के मारे संकोच करता रहता हूँ। उनका पुलाव-कलिया खाकर मोटा हो रहा हूँ। विधर्मियों का सब रंग चढ़ गया है।—हाँ, केवल राजपूत का नाम भर बाक़ी रह गया है।

(सोफ़िया का प्रवेश)

सोफ़ि०—दादाजी !

दादा०—हाँ—दादाजी का अनुमान झूठ नहीं है—ठीक सोचा था। दादाजी कहकर चुप क्यों रह गई बेटी ?

सोफ़ि०—दादाजी।

दादा०—दादू ख़ाँ, दादू ख़ाँ कहो। तुमने क्या मुझे दादाजी रक्खा है। तुमने तो 'जी' खाकर 'ख़ाँ' बना डाला है। इधर-उधर क्या ताक रही हो ?

सोफ़ि०—आपके पास एक अभ्यागत ब्राह्मण नहीं आए ? उन्हें पिता ने आपके पास भेजा था।

दादा०—मैंने उन्हें भगा दिया।

सोफ़ि०—यह आपने क्या किया ? अपने घर में नहीं रख सके; इसीसे पिता ने उनको आपके पास भेजा था।

दादा०—तुम्हारे पिता की समझ की तो बलिहारी ! वह नहीं रख सके, मैं कैसे रख सकूँगा।

सोफ़ि०—क्यों दादाजी, आप तो हिंदू हैं।

दादा०—लेकिन मेरे हड्डी-माँस में तो तेरा प्यार घुस

गया है। मेरा हिंदूपन तो मिट्टी में मिल गया। बीबी साहबा, मैं ब्राह्मण के लड़के की जाति नष्ट करने का साहस नहीं कर सका।

सोफ़ि०—आपने अनुचित किया। यह बात सुनकर पिता बहुत ही दुःखित होंगे।

दादा०—वह दुःखित होंगे—यह सुनकर मैं पहले ही से दुःखित हुआ जाता हूँ।

सोफ़ि०—पिता ने उसे न छोड़ने का निश्चय कर लिया था।

दादा०—इसीसे तो और भी ठीक हुआ। इसी कारण मैंने उसे इस स्थान से दूर कर दिया है।

सोफ़ि०—क्यों ?

दादा०—तुम्हारे पिता का इरादा अच्छा नहीं था। वह ब्राह्मण के लड़के को बेदीन करने के इरादे में थे।

सोफ़ि०—मेरे ज़रिए से ?

दादा०—हाँ।

सोफ़ि०—किस तरह ?

दादा०—किस तरह ? समझ देखो—तुम बुद्धिमती हो। जैसे तुम इन कटीली आँखों से देखतीं वैसे ही ब्राह्मण के लड़के का सिर ज़ोर से घूमने लगता। उसके बाद चटपट धर्म की क़ुरबानी !

सोफ़ि०—पागल हुए हैं आप दादाजी ! बादशाह-

ज़ादे जिसे पाने के लिये चटपटा रहे हैं वह कहीं एक तुच्छ ब्राह्मण के लड़के पर नज़र डालेगी।

दादा०—बादशाहज़ादे चटपटा रहे हैं!

सोफ़ि०—एक नहीं, चार चार चटपटा रहे हैं; (दादा जी हँसते हैं) आप हँस रहे हैं। आप क्या समझते हैं? मैं आपसे झूठ कह रही हूँ?

दादा०—झूठ क्यों कहोगी। मैं यह सोच कर हँस रहा हूँ कि इतने ऐसे ख़रीदार जुटे हुए हैं—तुम अपने को किसके हाथ बेचोगी?

सोफ़ि०—जो अधिक दाम देगा। नीलाम के दाम हैं—जो सबसे बढ़कर बोली बोलेगा उसी को मैं आत्मसमर्पण करूँगी।

दादा०—आख़री बोली कहाँ तक ठीक की है?

सोफ़ि०—आगरे का सिंहासन।

दादा०—किस शाहज़ादे ने क्या देना चाहा है?

सोफ़ि०—दारा ने कुछ कविताएँ दी हैं। शुजा ने जी भरकर 'जान' देने की बात कही है। औरंगज़ेब ने कुरान की बैदें दी हैं और छोकरे मुराद ने जान-माल और दीन-दुनिया दे डालने की बात सुनाई है।

दादा०—आगरे का सिंहासन कौन दे सकेगा? क्या समझती हो?

सोफ़ि०—सो कुछ अभी मेरी समझ में नहीं आता।

दादा०—सो कभी समझ में आवेगा भी नहीं। मैं समझ रहा हूँ। इस बात को पागल के सिवा और कोई समझ नहीं सकता। जो दे सकेगा उसके दान के भीतर ही मैं उसके साम्राज्य को देख रहा हूँ। लेकिन बेटी, वह तुमको सिंहासन देने का लालच दिखावेगा, मगर देगा नहीं।

सोफ़ि०—क्यों?

दादा०—तुम चाहे जितनी सुंदरी क्यों न हो, मुसलमानी भी क्यों न हो, पर तो भी राजपूत की बेटी हो। वह बादशाह होने पर कभी तुमको सिंहासन की आधी जगह नहीं देगा।

सोफ़ि०—वह कौन है दादाजी?

दादा०—कहता हूँ। अच्छा, इन शाहज़ादों ने तुमको देखा है?

सोफ़ि०—देखा नहीं है। लेकिन चारों जने देखने के लिये व्याकुल हो रहे हैं।

दादा०—सामना न करना। अगर शांति ही तुम चाहती हो तो कभी किसी तरह सामना न करना। और, अगर सिंहासन ही चाहती हो तो भी अभी सामना न करना।

सोफ़ि०—क्या कहा, फिर एक बार कहो।

दादा०—तुम्हारे हृदय में मेरी बात प्रतिध्वनित हो गई। अब मैं फिर नहीं कहूँगा।

सोफ़ि०—वही तो, मैं क्या चाहती हूँ ? मैं तो शांति चाहती हूँ।

दादा०—तुम्हीं क्यों—तुम चाहती हो, मैं चाहता हूँ; दुनिया के सब जीव इसी एक चीज़ की चाह में चूर हैं। इसी शांति के लिये राना प्रताप जन्म भर वनों में घूमते फिरे हैं। शक्तिसिंह ने बादशाह की गुलामी की है और फिर युद्धभूमि में भाई प्रताप के जीवन की रक्षा करके जहाँगीर का साथ छोड़ दिया है। तुम्हारे पिता मुसलमान हुए हैं। तुम सिंहासन पाने के लिये व्याकुल हो रही हो। और, मैं तुम्हारे प्यार के चक्कर में पड़ा हुआ पीर की दरगाह में डंडौतें कर रहा हूँ।

सोफ़ि०—अच्छी बात है। शांति के लोभ से ही तो मैं सिंहासन चाहती हूँ। सिंहासन में अगर शांति नहीं है तो सिंहासन से मुझे क्या मतलब है ? तो दया करके बताओ दादाजी, शाहज़ादों में से किसकी दरख़्वास्त मंजूर करूँ ?

दादा०—(हँसकर) प्रेम की अदालत में हुकूमत ! कहती क्या हो बेटी, दरख़्वास्त मंजूर करोगी ? दरख़्वास्त करने वाले को क्या दोगी ?

सोफ़ि०—उसे अपना अथाह प्रेम दूँगी।

दादा०—तो फिर दो दिन ठहर जाओ। मैं तुम्हारे प्यार की परीक्षा कर लूँ।

सोफ़ि०—क्यों, मेरे प्यार में क्या आपको कुछ संदेह है ?

दादा०—प्यार में कुछ संदेह नहीं है। संदेह होता तो अपनी मनोहर वनभूमि छोड़कर तुम्हारे इस महल के पिंजड़े में क्यों पड़ा रहता ? लेकिन इसकी जाँच अभी तक मैंने नहीं की कि तुम्हारा प्यार खट्टा है या कड़वा।

सोफ़ि०—अगर खट्टा हो ?

दादा०—तो 'बैद' मियाँ को दो।

सोफ़ि०—औरंगज़ेब को ?

दादा०—हाँ—औरंगज़ेब को। वह शाहज़ादा बड़ा ही धार्मिक है—वह खट्टे प्रेम को पाने के योग्य है। और, अगर कड़वा हो तो मुराद को दो। उसने तुमको दीनदुनिया सब देने का विचार प्रकट किया है। दुनिया क्या है, सो वह नहीं जानता। इसीसे उसने दुनिया देने की इच्छा प्रकट की है। उसे ज़रा कड़वे प्रेम का ज़ायक़ा चखाने से मालूम हो जायगा कि दुनिया क्या चीज़ है ?

सोफ़ि०—अगर मीठा हो ?

दादा०—(हँसकर) मीठा ! मीठा ! क्या कहा बेटी, मीठा ?

सोफ़ि०—हाँ दादाजी ! अगर मीठा हो ?

दादा०—अच्छा अच्छा, तो उसके लिये भी बताता हूँ। अगर शहद ऐसा मीठा हो तो दारा को दो। कविता

और शहद दोनों में ज़रा तेज़ी की ज़रूरत होती है। तुम्हारे मीठे प्रेम से उसकी कविता और भी मीठी होगी। और, अगर बाज़ार की मिठाई का ऐसा मीठा हो तो शुजा को दो। वह बड़ा ताक़तवर है। एक आध भिड़ काटेगी तो वह और फूल जायगा। और अगर रस का ऐसा मीठा हो तो मुझे दो। साला मन अब भी घर जाने के लिये तड़फड़ाया करता है, वह तुम्हीं में चिपका रहेगा।

सोफ़ि०—अगर फूलों के रस का ऐसा मीठा हो?

दादा०—(हँसकर) फूलों के मधु का ऐसा? तो आकाश में—हवा में—उड़ा दो। जो चाहता है वह भी पावेगा और जो नहीं चाहता वह भी पावेगा।

सोफ़ि०—जो नहीं चाहता ऐसा भी कोई है? कहते क्या हो दादाजी! तुम्हारी नातिन को नहीं चाहता, ऐसा आदमी दुनिया में कौन है?

(नारायणराव का प्रवेश)

नारा०—दादाजी महाराज! मैं एक बात आपसे कहने को भूल गया था। मैं जनाबआली महाबतख़ाँ से वादा कर आया था कि मैं आपके पास अतिथि होकर रहूँगा। वह नहीं हो सका—अब आप उनसे कह दीजिएगा कि शाम को उनसे मुलाक़ात करूँगा।

दादा०—अच्छा, कह दूँगा।

नारा०—बहुत अच्छा, सलाम।

दादा०—सलाम।

(नारायणराव का प्रस्थान)

दादा०—क्यों बेटी, देखा नहीं ?

सोफ़ि०—वही तो दादाजी ! यह क्या अंधा है ? देखना नहीं जानता या देखा ही नहीं ?

दादा०—यह क्या ? ब्राह्मण देखना नहीं जानता ! वह अपनी जाति की दृष्टि से देखता है। मालूम नहीं, उसने तुमको देखा या नहीं। अगर उसने न देखा हो तो सुनो बीबी साहबा, तुम्हारा यह शाहज़ादों को लुभानेवाला रूप ब्राह्मण की दृष्टि से देखने के योग्य नहीं है।

सोफ़ि०—(स्वगत) वही तो, दो दो दफ़े सामना हुआ, तो भी मेरी ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं ! यह क्या सिड़ी है ? पल भर के लिये भी उसकी दृष्टि मेरी ओर फिरकर स्थिर नहीं हुई !

दादा०—सोचती क्या हो बेटी ! सोच क्या है—चिंता क्या है ! ब्राह्मण का पुत्र तुमको न देखे न सही, मैं तो तुमको देख रहा हूँ। खट्टा नहीं देखता, कड़वा नहीं देखता, मीठा ही देख रहा हूँ। तुम्हारे रूप के घमंड को अगर धक्का न लगता तो मैं समझता कि तुम्हारा यह रूप असार है। सोफ़िया, तुम्हारे रूप में सार है। राजपूतानी के अब भी रूप को तुच्छ देखने का हृदय है।

सोफ़ि०—(हँसकर) वही तो दादाजी, उसने देखा नहीं ! जिस रूप को देखने के लिये हिंदोस्तान के सब अमीर-उमरा चटपटा रहे हैं, जिस रूप की परछाहीं दर्पण में देखकर मैं ख़ुद ही रीझकर घंटों खड़ी रहती हूँ, उस रूप को ब्राह्मण के पुत्र ने देखा नहीं ! अगर उसने देखकर भी न देखा हो तो यह रूप ब्राह्मण की दृष्टि में अवश्य ही बड़ा मलिन है ।

दादा०—बड़ा मलिन है ।

सोफ़ि०—ब्राह्मण कैसा सुंदर है !

दादा०—घोर सुंदर है ।

सोफ़ि०—उसकी दोनों आँखों की पुतलियाँ कैसी काली हैं !

दादा०—बहुत ही काली हैं !

सोफ़ि०—इसीसे शायद उसने देख नहीं पाया !

दादा०—ठीक है ! इसीसे शायद उसने देख नहीं पाया !

सोफ़ि०—बस, समझ गई ।

दादा०—बस, मैं भी ठंडा हो गया ।

तीसरा दृश्य

गुलनार

ठुमरी—कालिंगड़ा

तुम बिन पिया ! जिया घबराए ।
ज्यों बिन देखे चंद चकोरी विकल रहे, कुछ नहीं सुहाए;
सूर्य-उदय के बिना कमलिनी मलिन भई जैसे मुरझाए ।
त्यों बिन देखे प्राणनाथ यह दासी व्याकुल चैन न पाए;
दरसन देहु दया करि प्यारे विरह-वेदना सब मिटि जाए ।

गुल०—बाँदी, ज़रा इधर तो आ ।

(बाँदी का प्रवेश)

बाँदी—क्या हुक्म है बेगम साहबा !

गुल०—ख़बर ला तो, नवाब साहब कहाँ हैं । आगरे में जब से पैर रक्खा है तब से केवल एक बार उनको देख पाया है । तब से शाम होने को आती है मगर उनको नहीं देखा । आगरे में ऐसी क्या मोहिनी शक्ति है कि दिन भर में एक बार भी उन्हें मुझे देखने की मोहलत नहीं मिली !

बाँदी—ज़रूर किसी ख़ास काम में लगे हुए हैं; इसी से नहीं आ सके ।

गुल०—ऐसा कौन ख़ास काम है ? मालवे में सारा राजकाज छोड़कर दम दम भर पर वह मुझसे मिलने आते थे। और, यहाँ ऐसे किस ज़रूरी काम में लगे हुए हैं कि दिन भर में घड़ी भर के लिये भी मुझे देखने की फ़ुरसत उन्हें नहीं मिली !

बाँदी—तो क्या ख़बर लाऊँ बेगम साहबा ?

गुल०—ख़बर लावेगी ? नहीं, रहने दे। देखूँ, कब तक मुझे देखे बिना रह सकते हैं !

बाँदी—मुझे जान पड़ता है, बहुत से उमरा उनसे मिलने के लिये आए हैं। वह उन्हें छोड़कर आपसे मिलने नहीं आ सकते।

गुल०—यह मुमकिन है ? तो भी उन्हें कम से कम घड़ी भर के लिये मुझे देखने आना उचित था।

बाँदी—अपनी हालत देखकर ही आप उनकी हालत का अंदाज़ा कर न लीजिए बेगम साहबा ! कितने ही उमराओं की औरतें आपसे मुलाक़ात करने आई हैं। इस समय के बीच बाँदियों से बातचीत करने की फ़ुरसत आपने कितनी पाई है ?

गुल०—समझ गई, भीतर आना उनकी ताक़त के बाहर हो गया है। तो भी मैं अपने मन को समझा नहीं पाती। मैंने दिन भर मुँह से उमराओं की औरतों से बातचीत की है मगर मन में उन्हीं का ध्यान बना रहा

है। बाँदी, जब से मैं आगरे में आई हूँ तब से काँप रही हूँ।

बाँदी—क्यों बेगम साहबा?

गुल०—मेरे स्वामी बड़ी शान के आदमी हैं। बादशाह के साथ उनका पहले का संबंध और व्यवहार अच्छा नहीं था। अगर उनकी ख़ातिर में ज़रा सी भी कमी होगी तो वह बहुत ही दुखी होंगे—उन्हें बड़ा कष्ट होगा। मेरे सिवा कोई उसे समझ न सकेगा—कोई उन्हें दिलासा न दे सकेगा। इसीलिये मैं उनके साथ आगरे आई हूँ। नहीं तो उनके लिये बोझ होकर सारे परिवार को साथ लेकर मेरे आने की ज़रूरत नहीं थी।

बाँदी—बादशाह ने उनको न्यौता भेजकर बुलाया है। बेइज्ज़ती क्यों होगी बेगमसाहबा?

गुल०—आशा तो ऐसी ही है, तो भी जी नहीं मानता। भला अजमत तो आकर मिल सकता था! वह भी क्यों नहीं आया? वह बच्चा ऐसे किस काम में लगा हुआ है—आगरे के उमराओं के साथ उसका भी क्या कोई ऐसा काम आ पड़ा है कि वह भी आकर मुझसे नहीं मिल सका?

(अजमत का प्रवेश)

अजमत—मैं आ गया मा!

गुल०—दिन भर कहाँ थे?

अज०—कहाँ था, सो बताने के लिये बड़ा वक़्त चाहिए। दिन भर मैं आगरे की सैर करता रहा हूँ। मा, दुनिया भर में शायद ऐसा शहर और नहीं है! नीली जमना के किनारे अनेक रंग के सुंदर मकानों से सुहावना आगरा शहर, आसमानी सारी पहने स्वर्ग की परी की तरह, उस सारी दुनिया के मालिक की सेवा करने के लिये जैसे चुपचाप बैठा हुआ है! देखकर जान पड़ा, दुनिया भर के बढ़िया रतनों से अपने को सजा कर भी उसकी साध नहीं मिटी। इसीसे किसी न जाने देश से एक नीले कमलों की माला लाकर आगरा राजधानी ने अपने गले में पहन रक्खी है। इस शहर की एक एक जगह को अच्छी तरह देखना, मेरी समझ में, एक जन्म भर में भी पूरा नहीं हो सकता। इसीसे सारे आगरे को एक नज़र डाल कर देख आया हूँ। लेकिन इस तरह देखने में भी शाम हो गई!

गुल०—सिर्फ़ क्या इस शहर की ही सैर कर आए? शहर के आदमियों को नहीं देखा अजमत?

अज०—आदमियों को और किस तरह देखता मा?

गुल०—तुम ऐसे महात्मा के बेटे हो कि शहर न देखकर शहर के आदमियों को देखना ही तुम्हारा पहला और प्रधान काम था! सो तुमने क्यों नहीं किया?

अज०—मैं अभी बालक हूँ। आदमियों में कौन

कैसा है सो मैं किस तरह समझ सकूँगा ! तमाम दुनिया के आदमी आगरे में देख पड़ते हैं।

गुल०—बालक ज़रूर हो लेकिन तुमको, इसी उमर में, इसी आगरे में, बादशाही पल्टन की मन्सबदारी करनी होगी !—यह जानते हो ?

अजमत—मन्सबदारी !—मुझे ? मन्सबदारी मैं यहाँ क्यों करूँगा ?

गुल०—तुम्हारे पिता की यही इच्छा है।

अजमत—पिता की इच्छा है !

गुल०—हाँ, तुम्हारे पिता भी किसी समय यहाँ रहकर मन्सबदारी कर गए हैं। वह कहते हैं, यहाँ रहने से अनेक वीरों के लड़ाई के ढंग देख पाने की और लड़ने के फ़न की अनेक बातें सीख पाने की आशा है।

अजमत—यह तुम क्या कहती हो मा ? जिसने मेरे पिता के लड़ाई के ढंग और लड़ने के फ़न को देखा है उसे और वीरों से कुछ सीखने की ज़रूरत नहीं है।

(ख़ाँजहाँ का प्रवेश)

ख़ाँजहाँ—अजमत !

गुल०—वह लो—नवाब साहब भी आ गए ! घड़ी घड़ी कटना कठिन हो रहा था। एक बार भी आकर बाँदी को दर्शन नहीं दे सके ?

ख़ाँजहाँ—आ सकता तो ज़रूर ही आता बेगम साहबा !

हिंदोस्तान के अनेक देशों से अनेक उमरा लोग आगरे में आए हैं। उनसे बदले की मुलाक़ात करने ही में सारा दिन बीत गया। तुम्हारे पास आने की कौन कहे, ज़िंदगी भर में यही पहला मौक़ा है कि मुझे तुम्हें याद करने की भी छुट्टी नहीं मिली।

बाँदी—क्यों—मैं तो आपसे कही रही थी बेगम साहबा! झुंड के झुंड उमरा हुज़ूर आली से मिलने आए हैं।

गुल०—ठहर बाँदी—मेरे पास भी तो झुंड के झुंड कितनी ही उमराओं की औरतें आई थीं; लेकिन कहाँ, मैं तो दम भर के लिये हुज़ूर को नहीं भूल सकी!

ख़ाँजहाँ—और अब भी मुझे फ़ुरसत नहीं है! मैं अजमत को बुलाने आया हूँ। अजमत! तुम ज़रा बाहर जाओ। बादशाह ने तुमको हज़ारी मन्सबदार की सनद भेजी है, तुम जाकर सम्मान के साथ उसे लो।

गुल०—क्यों, मेरा कहना ठीक हुआ अजमत!

अजमत—मुझे यहीं रहना होगा?

ख़ाँजहाँ—बादशाह हुक्म देंगे तो रहना ही होगा। जाओ, बादशाह के भेजे उमरा लोग बहुत देर से खड़े तुम्हारी राह देख रहे हैं।

(अजमत का प्रस्थान)

गुल०—जा बाँदी, जल्दी नवाब साहब के आराम का बंदोबस्त कर। (बाँदी का प्रस्थान)

ख़ाँजहाँ—आराम ! कौन करेगा ?

गुल०—क्यों, क्या अब भी उमराओं की भीड़ नहीं हटी ?

ख़ाँजहाँ—उमराओं की भीड़ हट गई है, मगर चिंता है। जब तक दरबार से होकर लौट नहीं आता तब तक निश्चिंत होकर मैं आराम नहीं कर सकता।

गुल०—क्यों स्वामी, क्या कुछ अनादर का खटका है ?

ख़ाँजहाँ—अभी तक तो ख़ूब इज़्ज़त और ख़ातिर हो रही है। यहाँ तक कि जिसकी आशा नहीं थी वह भी पाया है। तो भी खटका नहीं जाता।

गुल०—आप अनुचित खटका कर रहे हैं।

ख़ाँजहाँ—शायद ऐसा ही हो। लेकिन जानती हो बेगम, खटका खाने का एक कारण होगया है। बहुत से उमरा—शाही दरबार के बहुत से ऊँचे दर्जे के आदमी मुझसे मिलकर मुझे सम्मान दे गए हैं। लेकिन एक आश्चर्य की बात है गुलनार, मेरे मित्रों में से कोई भी मुझसे मिलने नहीं आया !

गुल०—कौन नहीं आया ?

ख़ाँजहाँ—कोई नहीं आया। ख़ासकर मुझे महाबत ख़ाँ के आने की बड़ी आशा थी।

गुल०—वह तो मित्र से द्रोह कर चुका है। कौन मुँह लेकर आपके पास आवेगा ?

ख़ाँजहाँ—नहीं गुलनार, वह मेरा बड़ा भारी मित्र है। बदनसीबी के कारण हम दोनों में मनमैली हो गई। मैं ऐसे किसी मौक़े की राह देख रहा था, जिस दिन हम दोनों मित्र बुढ़ापे में विछोह की जलन को आनंद के आँसुओं से बुझा देते। बेगम, लेकिन वह मेरा सोचा नहीं हो सका। आज वह आ जाता तो हो जाता। फिर आवेगा तो मैं उससे मुलाक़ात नहीं करूँगा। वह क्यों नहीं आया? वह क्या इच्छा करके नहीं आया? या लाचार होकर मुझे इस शुभ सम्मिलन-सुख का भागी नहीं बना सका! होना जो कुछ है सो तो होगा ही; लेकिन तो भी गुलनार, मेरे जी में खटका लगा हुआ है।

(अजमत का प्रवेश)

अजमत—पिताजी, मैं तो मन्सबदारी नहीं लूँगा।

ख़ाँजहाँ—क्यों?

अजमत—मेरे पिता के दीवान का बेटा नारायणराव पाँचहज़ारी मन्सबदार हुआ है। मुझे उसकी मातहती में काम करना होगा।

ख़ाँजहाँ—सुन लिया बेगम?—(अजमत से) तुमने क्या नामंज़ूर कर दिया?

अजमत—मैंने कुछ नहीं कहा। मैं आपके हुक्म की राह देख रहा हूँ।

ख़ाँजहाँ—अभी चलो । मैं तुम्हारी तरफ़ से नामंज़ूर किए देता हूँ । समझ गया, चालाक मुग़ल ने ख़ूब ढेर की ढेर बेइज़्ज़ती का बोझ मेरे सिर पर लादने के लिये ही न्योता देकर मुझे आगरे में बुलाया है ।

(अजमत और ख़ाँजहाँ का प्रस्थान)

गुल०—दोहाई है जहाँपनाह, बिगड़कर कोई अनर्थ न खड़ा कर लीजिएगा ।

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—ख़ाँजहाँ के घर के सामने

दरिया और ख़ुदादाद

दरिया—जो मुग़ल, ख़ाँजहाँ लोदी के घर में मेहमान होकर सिर्फ़ बेइज्ज़ती लेकर लौट आया था, वही आज हिंदोस्तान का बादशाह है। तुमने क्या समझ लिया है कि कुटिल शाहजहाँ हमारे स्वामी के किए अपमान को भूल गया है?

ख़ुदा०—लेकिन क्या उसका बदला चुकाने के लिये न्यौता देकर अपने घर में बुलाकर सबके सामने उनका अपमान करेगा?

दरिया—मेरा विश्वास तो यही है। मगर हाँ, सबके सामने शायद न भी करे। शायद वह ऐसी चालाकी से अपमान करेगा कि हमारे स्वामी के सिवा और कोई उसे समझ भी न सकेगा।

ख़ुदा०—तभी तो मुश्किल है!

दरिया—ईश्वर न करे, लेकिन मुझे तो रंग-ढंग अच्छे नहीं जान पड़ते! इतना आदर—इतना दिखावा किस लिये है? बादशाहों को जैसा आदर नहीं मिलता
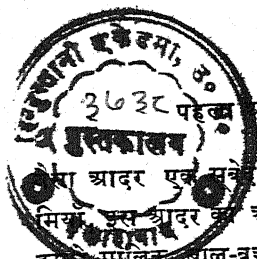
कैसा आदर एक सूबेदार का ! समझ में नहीं आता मियाँ, इस आदर का अंजाम क्या होगा ? न्यौता पाकर हमारे मालिक बाल-बच्चों के साथ आगरे में आए हैं। अगर कुछ आफ़त उठ खड़ी हुई तो उसका उपाय क्या होगा मियाँ ?

(एक सिपाही का प्रवेश)

सिपाही--दरिया ख़ाँ यहाँ हैं ?

दरिया—तुम कौन हो ?

सिपाही—मैं ख़ास पल्टन का रिसालदार हूँ।

दरिया—क्या ख़बर है ?

सिपाही—नवाब साहब ने आपको तलब किया है। बादशाह ने यह जानना चाहा है कि नवाब के साथ सिपाहियों का लश्कर कितना है ! आप सब ख़बर रखते हैं, इसीसे नवाब ने आपको हिसाब बताने के लिये बुलाया है। जल्द चलिए।

(प्रस्थान)

दरिया—(ख़ुदादाद से) क्या समझे ?

ख़ुदा०—डर क्या है भाई, ईश्वर तो है। हमारे पाँच सिपाहियों का बेड़ा तोड़ने में बादशाह के पाँच सौ सिपाही काम आ जायँगे। नवाब भी अकेले हज़ार दो हज़ार सिर काटे बिना नहीं रहेंगे। दरियाख़ाँ, तुम चिंता न करो। हम लोगों में से एक आदमी के भी जीते

रहते बादशाह नवाब के बदन में हाथ नहीं लगा सकते।
तुम निश्चिंत रहो।

(ख़ाँजहाँ का प्रवेश)

ख़ाँजहाँ—दरिया ख़ाँ !

दरिया—क्या हुक्म है जनाब आली ? जितना लश्कर और फ़ौज साथ आई है, उसका क्या हिसाब देना होगा ?

ख़ाँजहाँ—हिसाब पीछे देना । अभी जल्दी से एक काम करो । देख रहे हो, वह दूर पर एक उमराव आ रहा है—जल्दी से आगे से जाकर उसे ले आओ। खूब इज़्ज़त करना । वह उमराव भेष बदले हुए है । बादशाह के दरबार में वह वज़ीर के बराबर बैठता है । किसी तरह ख़ातिर में कमी न होने पावे । मेरे यहाँ पर होने की बात ज़ाहिर न करना ।

(दरिया का प्रस्थान)

ख़ाँजहाँ—ख़ुदादाद, देखो, वह उमराव जैसे यहाँ आकर मुझसे मिलने का इरादा जतावे वैसे ही तुम उससे लौट जाने के लिये कहना । कहना, नवाब साहब की तबियत अच्छी नहीं है—आज महल के बाहर नहीं आवेंगे । चाहे जितना कहे तो भी लौट जाने के ही लिये कहना ।

ख़ुदादाद—समझ गया जनाब आली, वह महाबत ख़ाँ हैं ।

ख़ाँजहाँ—हाँ, महाबत ख़ाँ है। लेकिन होशियार, यह बात किसी तरह न ज़ाहिर होने पावे कि उसको तुम जानते हो।

(ख़ाँजहाँ का प्रस्थान)

सिपाही—मामला क्या है खुदादाद मियाँ ?

खुदा०—मामला समझने का समय नहीं है; कहने की भी फुरसत नहीं है। महाबतख़ाँ आ रहे हैं। नवाब का हुक्म है, उसे बजा लाना ही होगा।

(दरियाख़ाँ और महाबतख़ाँ का प्रवेश)

(सबका उन्हें सलाम करना)

खुदा०—हुक्म जनाब आली ?

महा०—नवाब साहब को ख़बर दो कि एक उमराव उनसे मुलाक़ात करने आए हैं।

खुदा०—माफ़ कीजिएगा जनाब आली। दिन भर उमराओं से मुलाक़ात करते करते मेरे मालिक की तबियत शाम को ख़राब हो गई है। हम लोगों को हुक्म मिला है कि आप लोगों से यही अर्ज़ कर दें। गुस्ताख़ी माफ़ हो, आज वह बाहर नहीं आ सकेंगे।

महा०—उनकी तबियत ख़राब होने का कारण मैं समझ गया हूँ और इसीसे उनसे मुलाक़ात करने आया हूँ।

खुदा०—आप कौन हैं ?

महा०—उनसे कहो, उनके एक मित्र हैं।

खुदा०—इस दुनिया में जो मनुष्य है वही उनका मित्र है। मैं हुज़ूर आली का नाम जानना चाहता हूँ।

महा०—नाम बताए बिना मुलाक़ात न होगी ?

खुदा०—मुलाक़ात के लिये तो उनकी एकदम मनाही है! लेकिन हाँ, नाम मालूम हो तो एक दफ़ा जाकर उनसे अर्ज़ कर सकता हूँ।

महा०—कह दो, मुग़ल फ़ौज के सेनापति आए हैं।

खुदा०—जनाब आली, नाम बताए बिना मैं उनके पास हाज़िर नहीं हो सकूँगा। उन्होंने कहा है—खुद वज़ीर भी अगर आवें तो उन्हें खूब ख़ातिर के साथ बिदा कर देना।

महा०—मैं अनुरोध करता हूँ, एक बार नवाब साहब तक ख़बर पहुँचा दो। मैं एक ख़ास ज़रूरत से उनके पास आया हूँ।

(खुदादाद का प्रस्थान)

दरिया—जनाब आली तब तक ख़ास कमरे में चल कर ठहरें।

महा०—नहीं, ठहरने की ज़रूरत नहीं है। मैं उत्तर के लिये यहीं खड़ा रहूँगा।

दरिया—मुलाक़ात अगर न हो, तो जनाब आली हमारे स्वामी के ऊपर नाराज़ न हों। सचमुच उनकी तबियत ख़राब है।

महा०—मुलाक़ात होगी ही। उनकी तबियत क्यों ख़राब है, सो मैं समझ गया हूँ। उसका इलाज मेरे हाथ में है।

(ख़ुदादाद का प्रवेश)

ख़ुदा०—जनाब आली का नाम क्या है?

महा०—सेनापति कहने से काम नहीं चलेगा?

ख़ुदा०—जी नहीं जनाब आली! उन्होंने नाम पूछ भेजा है।

महा०—नाम बताने पर क्या मुलाक़ात हो जायगी?

ख़ुदा०—वह सिर्फ़ एक आदमी से मुलाक़ात कर सकते हैं।

महा०—किससे?

ख़ुदा०—महाबतख़ाँ से।

महा०—मैं ही महाबतख़ाँ हूँ।

(ख़ाँजहाँ का प्रवेश)

ख़ाँजहाँ—सलाम जनाब आली! आप ही इस समय मुग़ल सेना के सेनापति हैं! आपके इस पद-गौरव के लिये मैं आपको अपना अपार आनंद जताता हूँ। और, आपने मेरे लड़के को जो पद-गौरव दिया है, उसके लिये और भी अधिक आनंद जताता हूँ। आप मेरा धन्यवाद लीजिए।

महा०—उसी बारे में मैं आपसे अर्ज़ करने आया हूँ

कि आपके लड़के को मन्सबदारी देने में मैं नहीं शरीक हूँ—उसमें मेरा हाथ बिल्कुल नहीं है।

ख़ाँजहाँ—मुग़ल बादशाह के सेनापति ! आप मुझे यह अपनी लाचारी जताने आए हैं !

महा० — बहुत दिनों से मैंने राज-काज सब छोड़ दिया है।

ख़ाँजहाँ—बेईमान मित्र ! तुम मुझे घृणित दीनता की बात सुनाने क्यों आए हो ? शक्तिशाली राना के बेटे होकर तुमने ईमान छोड़ने के साथ ही अपनी सारी शक्ति भी गँवा दी, यह सुनकर मैं ईश्वर को धन्यवाद देते देते तुम्हारा दीन संग छोड़ता हूँ। क्षमा करो महाबत, अब फिर कभी ख़ाँजहाँ लोदी से मुलाक़ात होने की आशा न रखना।

महा०—लोदी ! इतना घमंड मत करो।

ख़ाँजहाँ—तुमको मैं घमंड दिखाऊँ. ऐसी हालत अब तुम्हारी नहीं है महाबतख़ाँ। ईश्वर ने तुमको अतुल शक्ति दी थी। उस शक्ति का ठीक व्यवहार न करने के कारण इस समय तुम एक मामूली कीड़े के बराबर भी नहीं रहे हो। एक समय महा शक्तिशाली जहाँगीर की प्रभुता को छीन लेनेवाले मुग़ल-सेनापति, आज मैं तुमको युद्ध के लिये ललकारने में भी लज्जित होता हूँ।

महा०—लोदी ! मैं जल्द तुम्हारी इस लज्जा का अंत किए देता हूँ।

ख़ाँजहाँ—ख़बरदार दोस्त, मेवाड़वीर की प्रतिज्ञा दिल्ली की तवायफ़ों की क़सम न होने पावे।

महा०—अच्छा दोस्त, तुम्हारे इस उपदेश को मैं बड़ी ख़ातिर के साथ क़बूल करता हूँ।

(महाबत के सिवा सबका प्रस्थान)

महा०—वही तो ! ऐसा अपमान ! मूर्ख नवाब ! मैं तुम्हारी भलाई के लिये तुमको सलाह देने आया और तुमने इन गुलामों के सामने मेरा ऐसा अपमान किया ! अभी तक तुम्हारा घमंड घटा नहीं ! अभागे, ठहर जा, अगर मैं सचमुच मेवाड़ का वीर हूँ तो मेरी यही प्रतिज्ञा है कि शीघ्र ही तुझे कीड़ों से भी बुरी हालत को पहुँचा दूँगा।

(दादाजी का प्रवेश)

दादा०—हाँ हाँ, प्रतिज्ञा मत करो महाबतख़ाँ !

महा०—मामा, आप यहाँ क्या करने आए ?

दादा०—तुमसे कहने आया हूँ कि अगर राजपूत के रक्त का अभिमान अभी तक रखते हो तो ऐसी असंभव प्रतिज्ञा मत करो। और, अगर मुसलमान होने का अभिमान रखते हो तो अतिथि का सर्वनाश करने का ख़याल भी न करना।

महा०—मामा, मैं जब आपसे उपदेश चाहूँ तब उपदेश देने आइएगा। अपनी तरफ़ से उपदेश देने

आने से आपकी इज़्ज़त नहीं रहेगी। आप अभी यहाँ से चले जाइए।

दादा०—चला जाऊँ ?

महा०—अभी—देर न कीजिएगा।

दादा०—बस। यह लो महीपतिसिंह अपनी पोशाक। इतने दिनों के बाद फिर मैं दादाजी का दादाजी हो गया !

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—दरबार

शाहजहाँ, आजफ़ और सिपाही लोग

शाह०—वज़ीर, जिन जिनको दरबार में बुलाया गया था, वे सब आ गए ?

आजफ़—सिर्फ़ महाबतख़ाँ नहीं आए। और सब आ गए हैं। ख़बर पाई है कि मालवे के सूबेदार आ रहे हैं।

शाह०—महाबतख़ाँ क्यों नहीं आए ?

आजफ़—क्यों नहीं आए, सो तो ठीक नहीं कह सकता जहाँपनाह। लेकिन मेरा अनुमान यह है कि आपने जिस ढंग से लोदी की ख़ातिर करने की तैयारी की है उसे देखकर सेनापति को शायद यह भय हुआ कि आप लोदी को दरबार में उनसे ऊँचा आसन देंगे।

शाह०—वज़ीर, आपका अनुमान, ईश्वर करे, सच हो। आपसे मैंने कभी जी की बात नहीं छिपाई। अपना धर्म छोड़ देनेवाले हिंदू पर किसी तरह विश्वास न करना। लोदी और महाबतख़ाँ में जब तक परस्पर शत्रुता बनी रहेगी तभी तक इस साम्राज्य की कुशल है।

आजफ़—इसमें तनिक भी संदेह नहीं। लेकिन यह

काम आपके पीछे आपही आप हो गया है। महाबतख़ाँ लोदी से मिलने गए थे, वहाँ लोदी ने उनका अपमान किया। दोनों ने परस्पर सदा शत्रु होकर रहने की प्रतिज्ञा कर ली है!

शाह०—कहाँ, मुझसे तो यह बात किसी ने नहीं कही!

आजफ़—मैंने भी कुछ ही देर पहले सुनी है। दादाजी महाराज के पास दरबार का न्योता भेजा था, वहीं से यह ख़बर मिली है। वह लोदी और महाबत का झगड़ा मिटाने गए थे। महाबतख़ाँ ने इसपर उन्हें भी झिड़क दिया। नाराज़ होकर दादाजी आगरा छोड़ गए हैं।

शाह०—तो फिर अब दम भर की देर मत करिए। उमराओं को बुलाइए। (आजफ़ का प्रस्थान)

(नाचनेवालियों का प्रवेश और गाना)

ठुमरी—एकताला

रायसा कान्हरा

आय गई ऋतु वसंत; शोभा वन छाई।
डोलत मृदु मंद पवन, पल्लव नव भए सघन,
फूल रहे फूल, चमन में बहार आई॥आय०॥
उदय हुआ चंद गगन, लोग हुए सभी मगन,
प्याले से लगी लगन, भाई तनहाई॥आय०॥
कोयल की मधुर तान, प्रेमी का प्रेम-गान,
करते आनंद-दान, होते सुखदाई॥आय०॥

[नारायणराव, उमरावलोग और आजफ़ का प्रवेश । आजफ़ का सबको यथोचित स्थानों पर बिठाना]

दादरा—थिएटर

जियो जुग जुग हे महराज शाहंशाह, तुम पर वारी ।
ये अमीर उमरा आला, जैसे नक्षत्रों की माला,
इनमें पूरा चाँद निराला, तुम हो कीर्तिकला के धारी ।
हो इंद्र-सदृश जग जाने, फ़रमान तुम्हारा माने,
हैं बैठे वीर बखाने, जैसे देव वृंद दरबारी ।
है प्रताप जग में छाया, जिसे देख शत्रु घबराया,
हो अचल छत्र की छाया, तुम नित करो न्याय रखवारी ।

शाह०—देखो नारायणराव, तुम्हारे पिता ने जो मेरी सहायता की है उसका बदला सारा साम्राज्य देकर भी नहीं चुकाया जा सकता । दक्खिन में मुसीबत में पड़कर जब मैं ख़ाँजहाँ लोदी के घर पर गया था, तब वह अगर मुझे जगह न देते—वह अगर तरह तरह की मुसीबतों से मुझे न उबारते—आगरे की राह तक न पहुँचा जाते—तो कौन कह सकता है कि आज मैं कहाँ होता ? इसके लिये ख़ाँजहाँ लोदी ने उनका अपमान भी किया, दुःख भी दिए । देश से निकाले जाकर बड़े कष्ट से बन-बन घूम कर उन्होंने बाक़ी ज़िंदगी काटी । अंत को बन ही में बड़े दुःख उठाकर उनकी जान गई । इसके लिये मुझे जैसा दुःख हुआ सो मैं तुमको कैसे जताऊँ । तुम

मुझे दुनिया की नज़र में एहसानफ़रामोश मत बनाए रक्खो। मैं तुमको इन सब उमराओं के आगे पाँचहज़ारी मन्सब और सरदारी देता हूँ।

नारा०—खुदावंद, पिताजी ने उस समय आपको मुसीबत में पड़ा हुआ देखकर, अपना कर्त्तव्य समझकर वह काम किया था। यह जान कर आपकी सहायता नहीं की थी कि आप भारत के सम्राट् होंगे। मरते समय मुझसे वह इनाम लेने के लिये मना कर गए हैं।

शाह०—यह इनाम नहीं है नारायणराव, यह मुनासिब ख़ातिरदारी है। यह ख़ातिर करने में मुझे बड़ी खुशी है। तुम क्या मुझे इस खुशी से ख़ाली रखना चाहते हो?

आजफ़—सरदार, जहाँपनाह की बात को मत टुलखो।

नारा०—मैं एक साधारण आदमी हूँ; शक्तिशाली ज्ञानी भारत-सम्राट् को मैंने जवाब दिया, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। मैं आपके इस सम्मान-दान को सादर सिर झुका कर ग्रहण करता हूँ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वार०—जहाँपनाह, ख़ाँजहाँ लोदी दरवाज़े पर खड़े हुक्म की राह देख रहे हैं।

शाह०—इज्ज़त के साथ ले आओ।

(ख़ाँजहाँ लोदी का प्रवेश और सम्राट् को यथोचित रीति से

अभिवादन करना। एक उमराव का आगे जाकर उनको लाना। निर्दिष्ट आसन पर ख़ाँजहाँ का बैठने के लिये उद्योग)

ख़ाँजहाँ—बादशाह सलामत, मेरा सलाम क़बूल कीजिए। (नारायणराव को देखकर स्वगत) यह क्या, नारायणराव ! अपना हुक्म न मानने के कारण जिसे मैंने देशनिकाले का दंड दिया था, उसका बेटा मेरे साथ शाही दरबार में मेरे ही बराबर के आसन पर बैठा है !

आजफ़—नवाब साहब, नारायणराव के पास वाले आसन पर बैठिए।

ख़ाँजहाँ—जहाँपनाह के सामने बैठने को मैं बेअदबी समझता हूँ।

नारा०—(स्वगत) काफ़ी बदला चुक गया ! इतने बड़े शानवाले ख़ाँजहाँ लोदी से इससे बढ़कर और क्या बदला चुकाया जा सकता है !

आजफ़—नहीं सूबेदार साहब, सामने बादशाह सलामत बैठे हैं। उनके हुक्म से बैठना बेअदबी नहीं है।

नारा०—(स्वगत) नहीं, अब नहीं बैठा रह सकता—पिता के मालिक,मेरे मालिक—नहीं,अब नहीं रहा जाता।

ख़ाँजहाँ—जहाँपनाह ! यह क्या आपका ही हुक्म है ?

आजफ़—यह आप क्या सवाल कर रहे हैं नवाब साहब ? क्या आप यह भी नहीं जानते कि दरबार में वज़ीर ही जहाँपनाह की ज़बान है ?

नारा०—(उठकर) वज़ीर साहब, मैं महात्मा मालवे के नवाब का एक साधारण सेवक हूँ। मेरे पास उनसे बैठने के लिये कहना उनकी बेइज़्ज़ती करना है। (ख़ाँजहाँ को अभिवादन करके) जनाब, बेजाने मुझसे यह अपराध बन पड़ा है—क्षमा कीजिएगा।

आजफ़—बादशाह के हुक्म से जिसे इज़्ज़त मिली है—बादशाह ने अपनी ख़ुशी से जिसे ऊँचा आसन दिया है, वह बादशाह के सिवा और किसी का नौकर नहीं है।

नारा०—अवश्य बादशाह ने मुझे गौरव दिया है और उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। लेकिन अपने पहले के मालिक का—अपने पिता के मालिक का—अपमान करने में मैं असमर्थ हूँ। नवाब साहब, क्षमा—

ख़ाँजहाँ—नहीं नारायणराव ! तुम दरअसल ऊँचे ख़याल के आदमी हो। तुम्हारे पास बैठने से तुम्हारे पहले के मालिक की कुछ भी बेइज़्ज़ती नहीं है। बादशाह ने ख़ुद जब तुमको इज़्ज़त दी है तब तुममें और मुझमें कुछ फ़र्क़ नहीं है। तुम बिना किसी संकोच के अपने आसन पर बैठो। कर्त्तव्य समझकर मैंने तुम्हारे बाप को देशनिकाले का दंड दिया था। कर्त्तव्यपालन में ख़ाँजहाँ लोदी किसी का मुँह नहीं ताकता। बादशाह ! मैं इस तख़्त काताबेदार हूँ। आगरे के तख़्त की इज़्ज़त रखने के लिये बादशाह की ख़ातिर नहीं की थी—मुसीबत

में पड़ा हुआ देखकर भी मैंने आपको अपने राज्य में स्थान नहीं दिया था। प्रभुभक्त दीवान शंकरराव ने मेरा हुक्म न मानकर आपकी सहायता की थी, इसी अपराध के लिये मैंने उसको अपने देश से निकाल दिया था। वही मैं आज तख़्त की तावेदारी के ख़याल से बादशाह सलामत को सलाम करने आगरे आया हूँ। जहाँपनाह अगर गुलाम को सज़ा के लायक़ समझते हों तो सज़ा दें।

शाह०—बहादुर, दिलेर, ईमानदार, ख़ैरख़्वाह ख़ाँजहाँ लोदी की सहायता पाकर मुग़ल बादशाहत का बल सौ गुना बढ़ गया। आप मेरे प्यार के क़ाबिल हैं, सज़ा के नहीं!

नारा०—जहाँपनाह, हुक्म दीजिए; गुलाम बिदा हो।

शाह०—(स्वगत) नारायणराव, तूने मेरी सब चालाकी मिट्टी में मिला दी! (प्रकट) जा सकते हो।

(नारायणराव का सलाम करके प्रस्थान)

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वार०—जहाँपनाह, नवाबज़ादा अजमत हाज़िर हैं।

शाह०—ख़ातिर के साथ यहाँ ले आओ।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

शाह०—(स्वगत) घमंडी ख़ाँजहाँ, यह न समझना कि तुम्हारे किए अपमान को शाहजहाँ इस जन्म में भूल जायगा! जब तक मैं तुमसे उस अपने अपमान का बदला नहीं चुका लूँगा तब तक हज़ार तख़्त-ताऊस भी

मुझे सुखी नहीं बना सकेंगे। जिस तरह होगा, मैं तुम्हारे इस घमंड को चूर करूँगा !

(अजमत को साथ लिये द्वारपाल का प्रवेश)

द्वार०—नवाबज़ादा, इसी जगह से बादशाह को कोर्निश कीजिए !

अजमत—यहाँ से क्यों ? सबसे श्रेष्ठ उमराव का बेटा जहाँ से कोर्निश करता है वहीं से करूँगा !

द्वार०—पहले वहाँ तक जाने के योग्य हो लीजिए, इतनी जल्दी क्यों करते हैं ?

अजमत—इसके क्या माने ?

द्वार०—आपके पिता क्या सबसे श्रेष्ठ उमराव हैं ?

अजमत—इसमें उज़्र किसको है ?

द्वार०—गुस्ताख़ी माफ़—इस गुलाम को ही उज़्र है।

अजमत—अब की यह बात मुँह से निकली तो सिर धड़ से अलग पड़ा होगा।

द्वार०—देर न कीजिए; इसमें बादशाह का अपमान होता है।

अजमत—मुझे मेरे लायक़ जगह पर ले चल।

द्वार०—यही आपके लायक़ जगह है।

अजमत - यहाँ से पिता के सिवा और किसी को अजमत लोदी सिर नहीं झुका सकता।

द्वार०—(अजमत की गर्दन पर तरवार रखकर)

यहीं से कोर्निश कीजिए—देर न कीजिए—नवाबज़ादा !

अजमत—तो ले कंबख़्त ! (तरवार से प्रहार करता है)

द्वार०—बचाइए बचाइए ! (गिरकर मर जाता है)

शाह०—गिरफ़्तार कर लो—गिरफ़्तार कर लो !

उमरा लोग—मारो मारो—क़तल करो क़तल करो !

ख़ाँजहाँ—ख़बरदार ! यह नहीं हो सकता जहाँपनाह ! ख़ाँजहाँ लोदी के मौजूद रहते इन सब भेड़ों की मजाल नहीं कि उसके बेटे के बदन में हाथ लगा लें !

आजफ़—लोदी, घमंड मत करो । यह दुनिया के मालिक शाहंशाह शाहजहाँ की राजधानी है—यह तुम्हारा मालवा नहीं है ।

(तेज़ी से दरियाख़ाँ और कुछ सिपाहियों का प्रवेश)

खुदा०—जहाँ ख़ाँजहाँ लोदी हैं वहीं उनका मालवा है।

सिपाही—जय नवाब साहब की जय ।

आजफ़—बादशाह सलामत ! अपनी रक्षा कीजिए ।

(तरवार से युद्ध करते करते सबका प्रस्थान)

(ख़ाँजहाँ, अजमत और दरियाख़ाँ आदि का फिर प्रवेश)

ख़ाँजहाँ—बस अजमत, प्राण और मान दोनों बच गए । आओ, इसी दम इस शैतान के यहाँ से चल दें ।

(प्रस्थान)

पर्दा गिरता है

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—अंतःपुर

गुलनार और बाँदी

ठुमरी—तिताला

ठेका पंजाबी—राग मालकौस

तू ही कर बेड़ा पार—ईश्वर।

तोरी महिमा अपार, जाने संसार, तू मददगार—ईश्वर ॥ तू० ॥
स्वामी सच्चा यार, दयानिधि, प्रानअधार निज जनका—
सरनागत हूँ, दासी हूँ, दुखिया हूँ, उबार ले अब, सुधार
दे सब, संकट सारे टार—ईश्वर ॥ तू ही० ॥

बाँदी—बेगमसाहबा, आगरा कैसी अच्छी जगह है!

गुल०—देख बाँदी, आगरे का सौंदर्य देखने की मुझे अभी तक फ़ुरसत नहीं है। जब तक नवाब साहब दरबार से इज़्ज़त और ख़ैरियत के साथ लौटकर नहीं आते तब तक मुझे कुछ भी देखने-सुनने की मोहलत नहीं है—कुछ भी नहीं सोहाता।

बाँदी—नवाब साहब के इज़्ज़त और ख़ैरियत के साथ

लौट आने में क्या अब भी कुछ संदेह है? लोगों के मुँह से मैंने सुना है कि आगरा शहर में कल जैसी धूमधाम हुई थी वैसी धूमधाम किसी बादशाह के गद्दी पर बैठने के समय भी नहीं हुई। छत पर बैठकर आपने भी तो आतशबाज़ी का तमाशा देखा था। झुंड के झुंड उमराव आकर जहाँपनाह का सम्मान कर गए हैं। इतने पर भी क्या संदेह करने की कोई बात है? आप चिंता न कीजिए, बादशाह हमारे नवाब साहब को बहुत मानते और दिल से उनकी इज्ज़त करते हैं। ऐसे मददगार का अनादर करके बादशाह कभी उनको अपने ख़िलाफ़ नहीं करेंगे। आप बेखटके रहिए।

गुल०—तू जो सोच रही है, वही ईश्वर करे, सच निकले! लेकिन तो भी जब तक नवाब लौटकर नहीं आते और मैं उनके चेहरे पर हँसी नहीं देखती तब तक मेरा जी नहीं मानता।

बाँदी—बेगमसाहबा, तब तक कुछ गुलाब के फूल तोड़ लाऊँ?

गुल०—ठहर बाँदी, नवाब साहब को लौट आने दे; इन सब बातों के लिये बहुत समय पड़ा हुआ है।

(अजमत और ख़ाँजहाँ का प्रवेश)

ख़ाँजहाँ—बेगमसाहबा!

गुल०—जहाँपनाह,—

बाँदी—एँ एँ ! यह क्या जहाँपनाह ! बेगम साहबा, गज़ब हो गया !

ख़ाँज०—चुप बाँदी ! शोर मत कर !

बाँदी—हाय अल्ला यह क्या ! खून—सारे बदन में खून—

ख़ाँज०—अजमत, बाँदी को यहाँ से हटा ले जाओ।

अजमत—आ बाँदी, चिल्ला मत—चल।

(दोनों का प्रस्थान)

ख़ाँज०—बेगम !

गुल०—सब समझ गई जनाब ! यह तमाम खून से आप तर हो रहे हैं। शायद आप बहुत अधिक घायल हो गए हैं—बेटे का भी वही हाल है।

ख़ाँज०—घाव तो कोई नहीं है। खून मेरा नहीं है; कुछ भेड़ों को हलाल कर आया हूँ; उन्हींका यह तमाम खून देख पड़ता है। केवल उस बेईमान बादशाह को नहीं मार सका। हाथ में आकर निकल गया—भाग गया।

गुल०—ऐसा क्यों हुआ ?

ख़ाँज०—वह सब हाल बताने का मौक़ा नहीं है। बेगम साहबा, इस समय विपत्ति में पड़कर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। (गद्गद स्वर से) गुलनार, मेरे सुख और दुख में सदा साथ देनेवाली !

गुल०—यह क्या जनाब ! आप इतने अधीर क्यों

हो रहे हैं ? मुसीबत को तो आप अपना दोस्त समझते हैं—संकट को आते देखकर आपमें जोश की बिजली दौड़ जाती है। फिर स्वामी, आज अटल हिमाचल क्यों चंचल है ?

ख़ाँज०—प्यारी गुलनार, जान के लिये नहीं।

गुल०—मान के लिये—समझ गई जनाब, मान को साथ लेकर आने से ही आप अपनेको संकट में समझ रहे हैं।

ख़ाँज०—बेईमान मुग़ल के चरित्र को मैं जानता था और इसीसे तुमको अपने साथ यहाँ लाने के लिये राज़ी नहीं था। मालूम नहीं, क्यों तुम्हारे व्याकुल होकर प्रार्थना करने को मैं टाल नहीं सका !

गुल०—आप निश्चिंत रहिए। ख़ाँजहाँ लोदी के मान को बिगाड़ने की ताक़त रखनेवाला आदमी दुनिया में पैदा नहीं हुआ। लोदी ख़ानदान के घर की एक तुच्छ बाँदी भी मुग़लों के हरम की छाँह पड़ने से अपने को अपवित्र समझेगी। जहाँपनाह अपना जो कर्त्तव्य समझें उसे निश्चिंत होकर करें। लोदी वंश के मान के ख़जाने की चाभी मेरे हाथ में है। मैं वहाँ की हथियार-बंद और होशियार पहरेदार हूँ। वहाँ आप डाकू का भय न करें।

(दरियाख़ाँ का प्रवेश)

दरिया०—जनाबआली, बस अब देर न लगाइए।

घड़ी भर भी देर करने से सब बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा। अगर शान के साथ आप मालवे को लौट जाना चाहते हैं, तो बस अब लहमे भर की भी देर न कीजिए।

ख़ाँजहाँ—दरियाख़ाँ, तो फिर सौ सिपाही साथ लेकर तुम्हीं बेगम के साथ रहो—इनकी रक्षा का भार मैं तुमको सौंपता हूँ।

दरिया०—जहाँपनाह की जो आज्ञा। तो फिर आओ माता! पुत्र ने जीवन में यही पहले पहल माता के दर्शन पाए हैं। अभाग्य के समय दास का यह पूरा भाग्य उदय हुआ! आओ, इस पवित्र भार को लेकर मैं अपने को कृतार्थ बनाऊँ।

गुल०—यह क्या! भार! भार कैसा? भार होने के लिये मैं स्वामी के साथ मालवे से आगरे नहीं आई हूँ। वृथा की इस बातचीत से अगर आपका काम बिगड़ जाय, अगर मैं दुश्मनों के हाथ पड़ जाऊँ, मेरी लड़की और बाँदियाँ अगर क़ैद हो जायँ तो मैं समझूँगी कि हम सब अपने ही अपराध से क़ैद हुई हैं।

ख़ाँजहाँ—मैं तुमको हज़ार हज़ार धन्यवाद देता हूँ। मालूम नहीं, अब मुलाक़ात होगी या नहीं—शायद आख़री सलाम यही है—

गुल०—सलाम जहाँपनाह। इस जिवन में मैंने न-जानें

कितने ही अपराध किए होंगे। करुणामय, दासी को नासमझ समझकर क्षमा कीजिएगा।

(अजमत का प्रवेश)

अजमत—मा !

गुल०—देर मत करो। ममता दिखाकर जहाँपनाह का काम मत ख़राब करो, जल्द जाओ।

(गुलनार और बाँदी का प्रस्थान)

दरिया०—अब क्या कर्त्तव्य है जहाँपनाह ?

ख़ाँजहाँ—जो जीते ही क़ब्र के अंदर है उसका और कर्त्तव्य क्या है दरियाख़ाँ ! ऊपर-नीचे, आस-पास—चारों ओर मौत का अँधेरा है—बस कर्त्तव्य ! कर्त्तव्य ! आग उगलनेवाले ज्वालामुखी पहाड़ की मूर्ति रक्खे हुए, विश्वासघातक बेईमान मुग़ल की लीला-भूमि, इस आगरे को छोड़ जाने के सिवा मेरा और कुछ कर्त्तव्य नहीं है। स्त्री और कन्या को साथ लेकर कितनी दूर जा सकूँगा दरियाख़ाँ ? तब तो यमुना के इस पार ही पकड़ लिया जाऊँगा—तब कौन किसकी इज़्ज़त बचावेगा ? बेगम अपनी इज़्ज़त बचाने के लिये चली गई हैं, तुम अपनी इज़्ज़त बचाओ। तुम सौ सिपाही और अजमत को साथ लेकर अभी मालवे की राह पकड़ो। मैं बाक़ी सिपाहियों को लेकर झाँसी की राह जाता हूँ।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—बाग़

(नारायणराव का प्रवेश और गाना)

ग़ज़ल

कुछ समझ पड़ती नहीं चाल ये जग की न्यारी—
एक मरता है, ख़ुशी और को होती भारी।
चंदरोज़ा है यहाँ जीना, मगर ये उस पर भी—
बाज़ आते हैं नहीं, करते दग़ा मक्कारी।
हाय अभिमान ! ये इंसान हो शैतान बने;
शान में ऐंठे फिरें—अक़्ल गई है मारी।
भूल ईश्वर को गए, जोकि है सबका स्वामी;
कैसे नादान बने, शान है इतनी प्यारी।

नारा०—महाबतख़ाँ का दुर्बोध वात्सल्य-भाव, सम्राट् का यह अयाचित दान, पूर्व मालिक के लड़के से भी बहुत अधिक गौरव का पद मिलना—यह सब क्या आप ही आप हुआ है ? या इसके भीतर किसीका कुछ बुरा विचार है और वही यह सब करा रहा है ? उसके ऊपर यह कैसी नई पहेली है ! महाबतख़ाँ की लड़की !—ना, ना,—मैंने एकांत में अकेले उसका नाम लिया तो

भी जैसे मेरी नस नस में बिजली दौड़ गई! यह क्या बात है! उसकी एक एक बात मेरी जातीयता पर धक्के मार रही है! छी छी, मैंने यह क्या किया! आगा-पीछा सोचे बिना क्यों बादशाह की गुलामी क़बूल कर ली!

(बुर्क़ा डाले हुए सोफ़िया का प्रवेश)

नारा०—आप कौन हैं बीबी साहबा?

सोफ़ि०—क्यों, आपने क्या कभी मुझे देखा नहीं?

नारा०—आवाज़ से जान पड़ता है, तुम सेनापति की कन्या हो।

सोफ़ि०—सचमुच आपने मुझे कभी नहीं देखा?

नारा०—अभी तक नहीं देखा।

सोफ़ि०—माफ़ कीजिएगा जनाब, मुझे विश्वास नहीं होता। भाग्यवश तीन तीन दफ़े आपसे मेरा सामना हुआ, तो भी आपने मुझे नहीं देखा!

नारा०—आप मेवार में होतीं तो आपको विश्वास होता। यहाँ अगर आप विश्वास न करें तो मैं आपको विश्वास नहीं करा सकता। आपके पिता विश्वास कर सकते हैं।

सोफ़ि०—कैसे?

नारा०—वह जानते हैं, दशरथ महाराज के पुत्र लक्ष्मण अपनी भावज सीता के साथ चौदह वर्ष तक वन वन घूमे, लेकिन कभी उन्होंने सीता का मुख नहीं देखा।

सोफ़ि०—हिंदू, यह बहुत ही विचित्र बात तुमने कही।

नारा०—जो राजपूत की लड़की है वह कभी इस बात को विचित्र नहीं समझ सकती।

सोफ़ि०—क्यों, आपने मुझे देखा क्यों नहीं ?

नारा०—मुझे आपको देखने का अधिकार नहीं है !

सोफ़ि०—क्यों ?

नारा०—आप पर्दानशीन, उमराव की बेटी हैं।

सोफ़ि०—मैं बिल्कुल पर्दानशीन नहीं हूँ। इस समय भी मुझमें राजपूतानी की स्वाधीनता है। नहीं तो मैं इस एकांत सूनी जगह में आपसे इतनी बातचीत न कर सकती।

नारा०—तो भी मैं आपको नहीं देखूँगा।

सोफ़ि०—क्यों ?

नारा०—देखने से लाभ ?

सोफ़ि०—ओ समझ गई, मैं मुसलमानी हूँ। तो शायद आप लाभ देखे बिना कोई काम नहीं करते।

नारा०—केवल मैं ही क्यों—दुनिया में कोई नहीं करता बीबी।

सोफ़ि०—आपने जीवन भर में क्या कभी किसी मुसलमानी का मुँह नहीं देखा ?

नारा०—अनेक मुसलमानियों को देखा है।

सोफ़ि०—सुंदरी ?

नारा०—उनमें बहुत सी सुंदरी भी थीं।

सोफ़ि०—फिर ? इस अभागिन को देखने में क्या बाधा है ?

नारा०—मैं आपके आगे कैफ़ियत देने तो आया नहीं हूँ बीबी साहबा !

सोफ़ि०—तो फिर यहाँ आप ऐसे असमय में क्यों आए ? मुझे मालूम है, आप जानते हैं कि मेरे पिताजी इस समय यहाँ नहीं हैं और इस बाग़ में मैं सखियों के साथ इस समय टहलने आती हूँ। यह सब जानकर भी आप यहाँ आए हैं।

नारा०—कैसी आफ़त है ! मैं कैफ़ियत देना नहीं चाहता !

सोफ़ि०—आप यह बताइए, आपको मेरे पिता का इस समय यहाँ न होना मालूम था कि नहीं ?

नारा०—मालूम था।

सोफ़ि०—फिर आप यहाँ क्यों आए ?

नारा०—मेरी ख़ुशी।

सोफ़ि०—आपकी ख़ुशी !

नारा०—यह न कहूँ तो क्या कहूँ बीबी साहबा ?

सोफ़ि०—आप जानते हैं, आप मेरे पिता की मातहती में काम करते हैं और यह भी जान रखिए कि मैं अपने पिता की बहुत दुलारी, प्यारी बेटी हूँ।

नारा०—आप मुझे नौकरी से छुड़ा देने का डर दिखाती हैं ?

सोफ़ि०—हाँ । मैं चाहूँ तो अभी आपको छुड़वा सकती हूँ ।

नारा०—यह अगर आप कर सकें तो मैं कृतज्ञता जताने के लिये अपना धर्म छोड़नेवाले राजपूत की बेटी का मुँह देखकर यमुना में नहाकर जन्म भर के लिये आगरा शहर छोड़ जाने को तैयार हूँ । (प्रस्थान)

(महाबतखाँ का प्रवेश)

महा०—सोफ़िया, ज़रा हट तो जा बेटी ! एक उमराव मुझसे मिलने के लिये आए हैं । जाओ बेटी, जाओ ।

सोफ़ि०—मैं नहीं जाऊँगी—मैं पर्दानशीन होना नहीं चाहती ।

महा०—पर्दानशीन होना नहीं चाहती !

सोफ़ि०—ना !

महा०—यह बात मुझसे कही तो कही, और किसी से मत कहना । अगर यह बात फैल गई तो बादशाह के हरम में प्रवेश करने की आशा छोड़ देनी पड़ेगी ।

सोफ़ि०—अच्छी बात है; मैं छोड़े देती हूँ ।

महा०—पगली, तू बक क्या रही है ! यह न समझना कि मैं तेरे मन के भाव को नहीं समझता । अपना काम निकालने के लिये ही मैंने उस मामूली ब्राह्मण के लड़के

को ऊँचा पद पाने में सहायता दी है । तेरे लिये नहीं । तेरे ही कहने से मैं अभिमानी ख़ाँजहाँ से मिलने गया था । वहाँ जाकर अपमानित हुआ । लोदी से सदा शत्रुता करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ । इसीसे आज ब्राह्मण का बेटा पाँच हज़ारी मन्सबदार है । तुम मुग़ल-हरम में जाने के लिये तैयार रहो ।

नेपथ्य में—हुजूर आली ! (महावत का प्रस्थान)

सोफ़ि०—अब समझ में आ गया कि तुम क्या हो ! ब्राह्मण, तुमने हिंदूपन के अभिमान से मेरी ओर नहीं देखा ! रूखे दक्षिणी ब्राह्मण, तुम क्या समझते हो कि मैं तुम्हारे इस अनादर को सह लूँगी ? मैं भी यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि तुम्हारी इन आँखों को इस मुसलमानी के मुँह की ओर फिराऊँगी । बादशाहत गँवानी हो तो वह भी मंजूर है, मगर तुम्हें इस तरह अनादर के भाव से मुँह फिराकर चले जाने न दूँगी । तुम्हारे इस घमंड को चूर कर सकूँ तभी मैं महाबतख़ाँ की बेटी हूँ ! (गाना)

ग़ज़ल

देखें कैसे नहीं वह चाह मेरी करते हैं;
मेरी उलफ़त का वह कैसे नहीं दम भरते हैं ।
आँख फेरी है उन्होंने तो मुझे भी जिद है,
करके छोडूँगी वही, जिससे कि वह डरते हैं ।
धर्म के ध्यान में उनको है ये मालूम नहीं—

है वही मौत मेरी जिस पै कि वह मरते हैं।
बेरहम एक नज़र देख इधर भी तो ज़रा—
तेरी उलफ़त का सनम, हम भी तो दम भरते हैं॥

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—मंत्रणा-भवन

शाहजहाँ और आजफ़

शाह०—वज़ीर, अब क्या कर्त्तव्य है ?

आजफ़—जहाँपनाह अगर नाराज़ न हों तो ग़ुलाम एक बात कहना चाहता है।

शाह०—क्या कहते हो, कहो।

आजफ़—यह काम बहुत ही बुरा हुआ।

शाह०—सो तो मैं भी मानता हूँ। मैंने सोचा था कि अपमान का बदला लेकर फिर लोदी को आदर और मीठी बातों से अपना दोस्त बना लूँगा।

आजफ़—अच्छा व्यवहार करके जिसे साम्राज्य का एक बड़ा भारी सहायक बनाया जा सकता था, उसी ख़ाँजहाँ को लड़कों की तरह बदला चुकाने के ख़याल में साम्राज्य की शांति का कंटक बना लेना अच्छा नहीं हुआ।

शाह०—पहले से तो सोचा नहीं था कि बात यहाँ तक बढ़ जायगी। अब ख़ाँजहाँ को अपनी ओर करने का क्या उपाय है ?

आजफ़—लोदी को फिर अपना दोस्त बनाने की

आशा तो अब करनी न चाहिए। हज़ार ख़ातिरदारी करने से भी लोदी अब हम लोगों पर विश्वास नहीं करेगा।

शाह०—ख़ैर, यह बात जाने दो। मुझे इस बात का ख़याल है कि लोदी जो कह गया क्या वही ठीक है? मेरे यहाँ के सब सूरमा सिपाही क्या भेड़ों के झुंड हैं? इतने आदमी थे; सब मिलकर भी एक बुड्ढे के बदन पर ज़रा-सा ज़ख़्म नहीं कर सके!

आजफ़—हुज़ूर, मैं तो उस अन्याय के युद्ध में हथियार उठा नहीं सका—साधारण सिपाही कुछ बना नहीं सके।

शाह०—अच्छा, अब इसका क्या उपाय है कि लोदी यहाँ से जा नहीं सके?

आजफ़—आज रात को ही इस बारे में कुछ निश्चय कर लेना असंभव है। मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि लड़ाई की नीति जाननेवाले को यही उचित है कि वह लोदी को मालवे न पहुँचने दे। जब बात यहाँ तक बढ़ गई है तब यह देखना हमारा पहला कर्त्तव्य है कि लोदी मालवे तक न पहुँचने पावे। मालवे में पहुँचते ही लोदी सेना जमा करने लगेगा। असंख्य पठान-सेना का मुखिया बनकर अगर मालवे का नवाब दक्खिन के दरवाज़े पर डट जायगा तो शायद हमें सदा के लिये उस देश की

आशा ही छोड़ देना पड़ेगी । इसके सिवा यही कैसे कहा जा सकता है कि मुग़लों में से कोई कोई उसके साथ न मिल जायँगे ?

शाह०—उसे राह में ही ज़रूर रोकना चाहिए।

आजफ़—ज़रूर रोकना चाहिए। मेरी समझ में अगर यह बंदोबस्त किया जा सके कि लोदी आगरे से ही बाहर न जा सके तो यह सबसे अच्छा होगा, क्योंकि तब थोड़ी ही सेना से लोदी का जाना रोका जा सकता है।

शाह०—ना वज़ीर ! यह मुझसे न हो सकेगा। आगरा शहर के भीतर लोदी के ऊपर किसी तरह का ज़ुल्मज़बरदस्ती करने का साहस मुझमें नहीं है—बड़ी बदनामी होगी।

आजफ़—तो फिर एक सुभीता यह है कि लोदी अपनी बेगम को भी अपने साथ आगरे लाया है। इस कारण वह जब चाहे तब यहाँ से भाग नहीं जा सकता। अभागे ने आप ही अपने पैरों में बेड़ी डाल ली है।

(नेपथ्य में दमामा बजता है और "अल्लाहो" का शब्द सुन पड़ता है)

शाह०—क्या हुआ ? यह कैसा शोर है ?

आजफ़—यह शोर तो जहाँपनाह, उधर ही हो रहा है जिधर लोदी का डेरा है।

शाह०—वह—फिर—फिर—मामला क्या है वज़ीर ?

(जासूस का प्रवेश)

जासूस—जहाँपनाह, मालवे के नवाब अपने देश को जाने की तैयारी कर रहे हैं।

आजफ़—जल्द जाओ, ख़बर लो, किस सड़क से जाते हैं।

जासूस—जो हुक्म। (प्रस्थान)

शाह०—वज़ीर, अब ?

आजफ़—गुलाम सब इंतिज़ाम किए लेता है। आप निश्चिंत रहिए जहाँपनाह !—बेगम उसके साथ में है—पग पग पर रुकावट उसके साथ है—कहाँ तक—कितनी दूर जायगा ? (महाबतख़ाँ का प्रवेश)

महा०—अभिमानी ख़ाँजहाँ अपनी स्वाधीनता बचाने के लिये बेगम को भी छोड़ने में नहीं हिचका। जहाँपनाह ! नवाब घमंड के साथ आपको युद्ध के लिये ललकारकर आगरा छोड़े चला जा रहा है।

शाह०—उसे रोकना होगा।

महा०—कौन रोकेगा ? कौन रोक सकता है जहाँ-पनाह ?

आजफ़—जहाँगीर को भी क़ाबू में करनेवाले महाबत ख़ाँ अगर चाहें तो रोक सकते हैं—और कोई नहीं।

महा०—दोहाई वज़ीर साहब, थोड़े से—तीन सौ—आदमियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये मुझसे अनुरोध

न कीजिएगा।

शाह०—तीन सौ थोड़े से और मामूली नहीं हैं सेनापति! हमारी थोड़ी सी लापरवाही होने पर तीन सौ के तीन लाख हो जायँगे।

महा०—संभव है। तो भी जहाँपनाह, गुलाम को यह अनुचित काम करने का हुक्म न दीजिएगा।

शाह०—हुक्म नहीं सेनापति, आप लोगों की सहायता से मिले हुए सिंहासन को प्रबल शत्रु के हाथ से लुटने से बचाने के लिये मैं आग्रह के साथ आपसे अनुरोध करता हूँ।

महा०—हुजूर, अगर आप यह प्रतिज्ञा करें कि जिस घड़ी ख़ाँजहाँ के मनसूबे को मिटाकर मैं उसे आपके सामने लाकर हाज़िर कर दूँगा उसी घड़ी आप अपने किए अपराध के लिये उससे क्षमा माँगेंगे, तो मैं उसका पीछा कर सकता हूँ। नहीं तो मैं आपकी आज्ञा को न मानने का अपराध करता हूँ। आप उसके लिये मेरा सिर ले लीजिए।

शाह०—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। जिस घड़ी तुम ख़ाँजहाँ को मुझसे फिर मिला दोगे उसी घड़ी मैं आपकी इच्छा के अनुसार उससे क्षमा माँग लूँगा।

आजफ़—इसके लिये मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ सेनापति!

महा०—तो सलाम जहाँपनाह, मैं उसका पीछा करने

जाता हूँ। (महाबत का प्रस्थान)

शाह०—वज़ीर, सिर्फ़ सेनापति पर भरोसा करने से काम नहीं चलेगा।

आजफ़—यह बात भी क्या मुझसे कहनी पड़ेगी जहाँपनाह ? आप भी आज ही रात को ख़ाँजहाँ को पकड़ने के लिये मेरे साथ चलने को तैयार हो जाइए। कोई जानने न पावे—दरबार का हाल शहरवालों के कानों तक पहुँचने न पावे; बीस हज़ार फ़ौज लेकर हम लोग भी आगरे से चल दें और लोदी का पीछा करें।

चौथा दृश्य

स्थान—दादाजी का घर

दादाजी

दादाजी—जब छुटकारा मिल गया, तब पीछे हटकर फिर पिंजड़े में क्यों घुसूँ? अब मैं किसका मुँह निहारूँ?—बस चल देना ही ठीक है। जँगली—जँगली!

(नौकर का प्रवेश)

दादा०—मैंने जँगली को बुलाया था—तू क्यों आया?

नौकर—आप जँगली को क्यों बुला रहे थे?

दादा०—मैं उसे उड़ने के लिये बुला रहा था। तू क्या उड़ सकेगा?

नौकर—अगर जँगली उड़ सकता है तो मैं क्यों न उड़ सकूँगा?

दादा०—अच्छा, ये सवार घोड़े दौड़ाते किधर—कहाँ गए हैं, अभी ख़बर ला।

नौकर—वे सरपट घोड़े भगाते बिजली की तरह गए हैं। मैं कैसे उनकी ख़बर लाऊँ।

दादा०—तू तो अभी कह रहा था कि मैं उड़ सकता हूँ।

नौकर—उड़ सकता हूँ; मगर भाग या दौड़ नहीं सकता ! उड़ना शौकीन लोगों का काम है—दौड़ना छोटे लोगों का काम है।

दादा०—तो तू ख़बर नहीं ला सकता ?

नौकर—ला क्यों नहीं सकता ? ख़बर पाऊँ तो अभी ले आऊँ।

दादा०—मैं ख़ुद ही जाकर अगर ख़बर ले आऊँ तो शायद तुझे बड़ा सुभीता हो। यही तेरे लिये अच्छा है; क्यों न ?

नौकर—हुज़ूर तो सब जानते हैं। ग़रीब को अपनी सेवा में आप रक्खे हुए हैं, इसीसे ग़रीब अभी तक टिका हुआ है। आपको दुनिया का कोई काम करते न देखकर ही मैंने नौकरी की है। सब तो आप जानते ही हैं।

दादा०—पर अब तो तेरी नौकरी रहेगी नहीं।

नौकर—क्यों हुज़ूर ?

दादा०—मैं अब बैठा नहीं रहूँगा; काम करूँगा।

नौकर—आप लाख कहें, मगर मुझे तो विश्वास नहीं होता।

दादा०—मैं आगरा छोड़कर चला जाऊँगा।

नौकर—कहाँ जाइएगा ?

दादा०—इसका कुछ ठीक नहीं है। यह मैं तुझसे कैसे कहूँ कि कब कहाँ रहूँगा।

नौकर—इस बुढ़ापे में ? ऐसे मज़े का खाना छोड़कर ? चले जाइएगा ?

दादा०—अब महाबतख़ाँ का अन्न खाना नहीं बदा है। तू हँस रहा है मुड़िया ?

नौकर—हुज़ूर, यह बात सुनकर मुड़िया क्या है, चिड़िया तक हँसे बिना नहीं रह सकती। आप अगर फिर से दुनिया के फेर में फँस सकते हैं तो मैं भी आँखें मूँदकर एक जगह पड़ा रह सकता हूँ।

(जँगली का प्रवेश)

दादा०—क्या ख़बर है ?

जँगली—घोड़ा तैयार है।

दादा०—किधर जाऊँ ?

जँगली—जिधर ठीक समझें महाराज ! नवाब ख़ाँजहाँ झाँसी की सड़क से गए हैं। उनकी बेगम और बेटा अजमेर की तरफ़ रवाना हुए हैं। बादशाह ने अपने आदमी दोनों ही सड़कों पर भेजे हैं। मगर नवाब को कौन पकड़ पावेगा ? सिर्फ़ आप उनके पास पहुँच सकते हैं। नवाब को पकड़ना मुग़ल सरदारों का काम नहीं है।

दादा०—यह कुछ मालूम हुआ कि नवाब को पकड़ने कौन कौन गया है ?

जँगली—महाबतख़ाँ अजमेर की तरफ़ गए हैं। बादशाह और वज़ीर दोनों ने झाँसी की राह पकड़ी है।

दादा०—तो अजमेर की तरफ़ जाना ही ठीक है। तेरी क्या सलाह है ?

जँगली—मैं क्या बताऊँगा ?

दादा०—जा अपने साथियों को लेकर फाटक पर खड़ा हो। मैं ज़रा यह देखूँगा कि आगरे में खाँजहाँ का कोई आदमी रह गया है या नहीं। (जँगली का प्रस्थान) (मुड़िया से) आँखें फाड़-फाड़कर तू क्या मेरी ओर देख रहा है ?

मुड़िया—यही देख रहा हूँ कि हुज़ूर, आप इस तरह अपने को हम लोगों से छिपाए हुए थे ! मैं समझता था कि आप भी हम लोगों ही की तरह दुनिया के किसी झगड़े से सरोकार नहीं रखते।

दादा०—अब यह बता कि तू हमारे साथ जाना चाहता है या आँखें मूँदे यहीं पड़ा रहना चाहता है ?

मुड़िया—जा भी सकता हूँ, पड़ा भी रह सकता हूँ। लेकिन जाने की बात क्या है, आप जानते हैं ?

दादा०—जी चाहे तो जा सकता है; क्यों न ?

मुड़िया—(हँसकर) हुज़ूर तो सभी जानते हैं।

दादा०—और आँखें मूँदकर पड़े रहने की बात भी जी चाहने पर ही है। अच्छा तो तेरा जी पड़े रहने के लिये ही चाहे तो बड़ा अच्छा !

मुड़िया—सो जब हुज़ूर हुक्म कर रहे हैं—

दादा०—हाँ भैया, मैं तुझे बड़ी खुशी से यह हुक्म देता हूँ। आज से तू इस तोंद को तेल से तरकर सूर्य के सामने दिखाकर ख़ाली इसकी बढ़ती की दुआ माँगा कर। अगर फिर कभी लौटा तो तेरी इस तोंद के दर्शन करके कृतार्थ होऊँगा।

मुड़िया—हुक्म तो बहुत अच्छा दिया हुजूर, मगर यह तोंद बनी कैसे रहेगी ?

दादा०—इस घर में जो कुछ मेरा रह जायगा उसी से इस तोंद को बनाए रखना। वह सब मैं तुझको दिए जाता हूँ।

मुड़िया—वाह हुजूर वाह! मैं आपको सलाम करता हूँ।

दादा०—(हँसकर) सलाम। (मुड़िया का प्रस्थान)

(सोफ़िया का प्रवेश)

दादा०—यह क्या! तुम कौन ?

सोफ़ि०—पहचान नहीं सकते कि मैं कौन हूँ ?

दादा०—ना।

सोफ़ि०—सच या दिल्लगी कर रहे हो ?

दादा०—यह सब बताने के लिये मुझे समय नहीं है। मैं अभी आगरा छोड़कर चल दूँगा।

सोफ़ि०—मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।

दादा०—यह भी कहीं हो सकता है ? तुम सेनापति की बेटी हो!

सोफ़ि०—आपने तो मुझे पहचान लिया।

दादा०—बिल्कुल नहीं पहचाना—तुम्हारे बाप को ही नहीं पहचान सका। तुम तो उस बहुरूपी धर्मत्यागी की कन्या हो।

सोफ़ि०—साथ न ले चलोगे ?

दादा०—तुम मेरे साथ क्यों जाना चाहती हो? बताओ।

सोफ़ि०—पिता के आचरण से मुझे दुःख हुआ है।

दादा०—उँहू।

सोफ़ि०—अतिथि के ऊपर अत्याचार होने से मुझे बड़ा शोक हुआ है।

दादा०—उँहू; झूठ बात।

सोफ़ि०—झूठ बात है! होशियार दादाजी, दूसरे आदमी को यह बात कहने का साहस आज तक नहीं हुआ—पिता तक को साहस नहीं हुआ।

दादा०—होशियार सोफ़िया, अब मैं तुम्हारे अन्न से पलनेवाला दास दादूमियाँ नहीं हूँ; मैं राजपूत सरदार दादाजी महाराज हूँ! तुम्हारे पिता ने मुझे त्याग दिया है।

सोफ़ि०—मैंने तो नहीं छोड़ा!

दादा०—तुम न छोड़ो, मैं छोड़ता हूँ।

सोफ़ि०—साथ न ले चलोगे?

दादा०—पहले तुम यह प्रतिज्ञा करो कि जन्म भर के लिये पिता को छोड़ दोगी।

सोफ़ि०—धार्मिक राजपूत, तुम अगर इस कठिन काम के लिये आज्ञा दे सकते हो तो मैं भी कर सकती हूँ।

दादा०—अच्छा यह बात जाने दो। ब्राह्मण के बेटे की आशा छोड़ सकती हो? बोलो, मैं सच्चे जी से तुम को आज्ञा देता हूँ। बोलो सोफ़िया बेगम, बोलो।

सोफ़ि०—आप मुझपर वृथा संदेह क्यों करते हैं?

दादा०—मैं देर नहीं कर सकता—जल्द बताओ। तुम्हें पिता को न छोड़ना पड़ेगा। जब तक तुम मेरे साथ रहना चाहोगी तब तक साथ रक्खूँगा; जब लौटना चाहोगी उसी दम तुम्हें तुम्हारे पिता के पास पहुँचा दूँगा। बोलो सोफ़िया, यह हो सकता है? (हँसता है) क्यों बेटी?

सोफ़ि०—दादाजी, ब्राह्मण कैसा मूर्ख है! मुझे नहीं देखा!

दादा०—यह क्या कम दुःख की बात है!

सोफ़ि०—हाँ दादाजी।

दादा०—हाँ बेटीजी।

सोफ़ि०—तो तुम जाओ। लेकिन दादाजी, यह प्रेम नहीं है।

दादा०—कौतूहल है कौतूहल।

सोफ़ि०—ठीक कहा दादाजी—कौतूहल है। यह देखने की बड़ी इच्छा हो रही है कि वह ब्राह्मण इस मुँह की

ओर देखता है या नहीं।

दादा०—सो तो होगी ही—मेरी इच्छा हो रही है कि उसकी दोनों आँखें निकालकर तुम्हारी नाक में बुलाक की जगह लटका दूँ। वे कमल-दल सी विशाल आँखें सोफ़िया बेगम की बुलाक होकर सेवा किया करें।

सोफ़ि०—तो—तुम—जाओ।

दादा०—अच्छा, सलाम सोफ़िया बेगम ! तो मैं जाता हूँ।

(प्रस्थान)

सोफ़ि०—वही तो, अब मैं किससे ध्यान लगाऊँ ? साम्राज्य को देखूँ या मन्सबदारी को ? पर्दा पसंद करूँ या दक्खिन के पहाड़ों पर के खुले आकाश की सैर पसंद करूँ ? या ख़ाँजहाँ लोदी का ख़याल करूँ ? जाने दो, मैं यह कुछ न सोचूँगी। इतने बड़े त्याग की बात मैंने सुनाई तो भी उस ब्राह्मण के बेटे ने मेरी ओर आँख उठाकर नहीं देखा ! ब्राह्मण, साम्राज्य की अधीश्वरी होकर तो मैं जब जी चाहे तब तुमको तुम्हारे इस अनादर का दंड दे सकती हूँ। लेकिन नहीं—यह नहीं सोचूँगी—अपनी इस समय की अवस्था देखकर मैं कुछ ठीक नहीं कर सकती; तब फिर नतीजा सोचने से फल क्या है ? सोचूँगी नहीं, तो भी सोचती हूँ।—बेशुमार मुग़ल सेना भागते हुए लोदी का पीछा कर रही है—मैं यहाँ पर खड़ी हुई जैसे उनका सब ढंग देख रही हूँ। अभिमान और शान की पीठ पर

चढ़े हुए लोदी बिजली की तरह जा रहे हैं! उनके पीछे मेरे पिता हैं—विश्वविजयी महाबतखाँ का चेहरा आज धर्म-हानि से उतरा हुआ है। छी—छी—जहाँगीर को जीतनेवाले की यह दुर्दशा मुझसे नहीं देखी जाती। साथ में वही ब्राह्मणपुत्र हैं—मगर क्या वह भी ज्योति-हीन हैं? नहीं, उनका चेहरा ज्योति से भरा दमक रहा है। मैं ठीक देख रही हूँ। यह सच है या स्वप्न है? नहीं परीक्षा है—परीक्षा। मैं देखूँगी, मेरी यह दूर-दृष्टि ठीक है या नहीं। अच्छा आगरा राजधानी! विदा! साम्राज्य! तुझे दूर से दंडवत! पिता! जन्म भर के लिये अपनी कन्या की ममता भुला दो! और, ब्राह्मण! तुम आँख उठाओ।

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—राह

नारायणराव

नारा०—मैं यहाँ निश्चेष्ट होकर बैठे रहने के लिये क्या पाँच हज़ार फ़ौज का मन्सबदार हुआ हूँ ! यह तो कम विपत्ति नहीं है ! ख़ाँजहाँ लोदी से बदला लेने के लिये ही मैंने बादशाह की नौकरी स्वीकार की थी। लेकिन अब जब जी चाहे तब नौकरी छोड़कर आगरे से चले जाने का कोई उपाय नहीं है। ख़ाँजहाँ लोदी का क्या हुआ; उनकी बेगम, पुत्र और कन्या साथ आई थीं, उनका क्या हुआ—यह जानने के लिये चित्त बहुत ही चंचल हो रहा है। सम्राट् ने अपने अपमान का बदला चुकाने के लिये दरबार में मुझे ऊँचा आसन देकर लोदी का अपमान किया। उस बदला चुकाने में मेरे गौरव करने की कोई बात नहीं है। युद्धभूमि में शस्त्र लेकर द्वंद्व युद्ध करके अगर मैं नवाब को नीचा दिखा सकूँ तभी उस मेरे बदला चुकाने का गौरव हो सकता है। लेकिन जैसी दशा देख पड़ रही है उससे तो जान पड़ता है कि वह बात मेरे भाग्य में बदी हुई नहीं है। मेरी यह

मन्सबदारी केवल माहवारी तनख़्वाह वसूल करने के लिये ही है।

(एक सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—जनाबआली, एक बालक इस राह से आ रहा है। उसके बारे में क्या करने के लिये हुक्म होता है?

नारा०—बालक हो, बूढ़ा हो, औरत हो, किसीको भी इस राह से मत जाने दो। वह बालक कौन है? उसे यहीं मेरे पास ले आओ।

(सिपाही का प्रस्थान)

नारा०—काम तो अच्छा मिला! मन्सबदार के लिये यह एक तरह की लड़ाई बुरी नहीं है। बदला लेने की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर आगरे आया था। धीरे धीरे देख पड़ता है कि मैं आप अपने ही फैलाए जाल में बँध गया। इस जाल से छूटने की कल्पना भी मेरी शक्ति से बाहर देख पड़ रही है। पृथ्वी पर गिरनेवाले जल के साधारण बूँद की हँसी जैसे आकाशव्यापिनी विभीषिका को छिपा रखती है, वैसे ही जान पड़ता है, एक कोई विभीषिका मेरे इस अकस्मात् होनेवाले भाग्योदय के भीतर, भविष्य के अंधकार में, छिपी हुई है। मैं मंत्रमुग्ध की तरह समझकर भी जैसे उसे समझ नहीं पाता।

(सिपाही का बालक के वेश में सोफ़िया को लेकर प्रवेश)

सिपाही—हुज़ूर, यह वही बालक है। मैंने इस राह

में न आने के लिये इससे कहा, मगर इसने नहीं सुना। इसीसे आपके पास इसे पकड़ लाया हूँ।

नारा०—बालक, तुम कौन हो?

सोफ़ि०—मैं नहीं बताऊँगा।

नारा०—(चौंककर स्वगत) यह क्या! ऐसा स्वर तो मैं पहले सुन चुका हूँ।—(प्रकट) तुम कहाँ जा रहे हो?

सोफ़ि०—नहीं बताऊँगा।

नारा०—मेरी तरफ़ देखो।

सोफ़ि०—नहीं देखूँगा।

नारा०—(स्वगत) वाह! मुसलमानी का मधुर स्वर इस बालक ने कहाँ पाया! मैंने उस रमणी की बातचीत सुनी है। उस तेजस्विनी ने दर्प से भरी आवाज़ से मेरे कानों में बराबर कई बार अमृत की वर्षा की है! उसके आचरण से मन ही मन मैं क्रोधित हुआ था, लेकिन तो भी मेरे कान उस अमृत को पीने की अभिलाषा अभी तक नहीं छोड़ सके? इसीसे क्या विधाता ने दयापूर्वक इस बालक के कंठ में वह अमृत भरकर मुझ दीन प्यासे के पास इसको भेज दिया है? (प्रकट) तुम जानते हो कि यह राह बालकों के लिये सुगम नहीं है?

सोफ़ि०—जानता हूँ।

नारा०—जानकर भी तुम अकेले इस राह से जाने को तैयार हो ?

सोफ़ि०—आप तो सब देख ही रहे हैं।

नारा०—तुम तो बड़े ही साहसी देख पड़ते हो बालक !

सोफ़ि०—आपने समझ लिया, यह जानकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ।

नारा०—(सिपाही से) जाओ, जब तक मैं दूसरी आज्ञा न दूँ तब तक इस बालक को मेरे डेरे में रक्खो।

सोफ़ि०—मैं इस बेअदब सिपाही के साथ नहीं जाऊँगा।

नारा०—क्यों, क्या इसने तुम्हारे साथ कोई बुरा व्यवहार किया है ?

सोफ़ि०—इसने मुझे जाने नहीं दिया।

नारा०—उसमें इसका कुछ अपराध नहीं है। मैंने ही ऐसा करने का हुक्म दे रक्खा है।

सोफ़ि०—आप सिपाहियों की पोशाक पहने हैं—अनुमान करने के लिये लाचार हूँ कि आप वीर पुरुष हैं। फिर इस बालक का जाना रोककर आपने अपने इस वीर बाने का अपमान क्यों किया ?

नारा०—बालक, तुम नहीं जानते कि सरकारी हुक्म की तामील करना ही सेनापति का कर्त्तव्य हुआ करता है।

सोफ़ि०—बालक की राह रोकने का भी क्या सरकारी हुक्म है ?

नारा०—बालक, बूढ़ा, औरत, जो कोई इस राह से जाय उसे ही रोकने के लिये मुझे शाही हुक्म है।

सोफ़ि०—जो कोई इस राह से जायगा उसीको आप रोक लेंगे ?

नारा०—ऐसा ही इरादा करके तो मैं यहाँ बैठा हूँ।

सोफ़ि०—अगर ख़ुद बादशाह इस राह से जायँ ?

नारा०—तुम सिर उठाओ।

सोफ़ि०—आप उत्तर दीजिए।

नारा०—उत्तर देने से सिर उठाओगे ?

सोफ़ि०—सो मैं वादा नहीं कर सकता।

नारा०—अच्छी बात है, सिर उठाओ या न उठाओ। सुनो, केवल एक व्यक्ति को नहीं रोक सकूँगा। उसके सिवा अगर कोई—वह ख़ुद बादशाह ही क्यों न हों—इधर से जायगा तो मैं उसे रोक लूँगा।

सोफ़ि०—वह एक आदमी कौन है ?

नारा०—यह बात तुमसे कहने से लाभ क्या है ?

सोफ़ि०—मैं सिर उठाऊँगा।

नारा०—वह अमीर-उल-उमरा महाबतख़ाँ की कन्या—

सोफ़ि०—हुज़ूर आली, बस मेरा सलाम लीजिए।

नारा०—अहा, यह बालक कैसा सुंदर है ! अधखिली

कली की तरह इस रमणीय और मधुर मुख के सौंदर्य को अब तक छिपाए हुए जैसे आप ही अपने रूप को गले लगा रहा था! बालक, पहाड़ी प्रकृति ने तुम्हारा कौन अपराध किया है जो तुमने उसे यह चंद्रमुख देखने के सौभाग्य से वंचित कर रक्खा है?

सोफ़ि०—आप अनुमान कीजिए।

नारा०—तुम्हारे मन में कोई बड़ा भारी दुःख है।

सोफ़ि०—बड़ा भारी दुःख है!

नारा०—क्या बताओगे, किसलिये दुःख है?

सोफ़ि०—कहने से कुछ उसका उपाय आप कर सकेंगे क्या?

नारा०—बड़ा कठिन प्रश्न है!—मुझे जान पड़ता है, तुम ख़ाँजहाँ लोदी के कोई हो।

सोफ़ि०—मुझे भी वही जान पड़ता है। नहीं तो मेरा प्रश्न आपको कठिन क्यों जान पड़ता?

नारा०—तुम विचित्र बालक हो—

सोफ़ि०—आपकी अनुमान-शक्ति भी विचित्र है।

नारा०—(सिपाही से) जाओ, इस बालक को मेरे डेरे में रक्खो।

सोफ़ि०—जो हुक्म मन्सबदार साहब! (स्वगत) बस झगड़ा मिट गया—तुम पहचान नहीं सके।

(सिपाही और सोफ़िया का प्रस्थान)

नारा०—बालक, तुमने मेरी बड़ी ही रक्षा की। मैं मुसलमानी की स्वर-लहरी में बिल्कुल डूब ही गया था; तुमने न-जानें कहाँ से देवदूत के रूप में, मेरे हृदय की बात सुनकर, मुझे डूबते से उबार लिया। सोफ़िया, अब मैं तुझे नहीं डरता। तेरी मीठी बातें सुनकर मेरा हृदय और मेरे कान तृप्त हो गए। (नारायणराव का गाना)

दादरा—पीलू

धुन—थिएटर

मुझे इस बालक ने आकर बचाया।
बोली प्यारी लगे—जिया जैसे ठगे;
भाग मेरे जगे, इसको पाया—मुझे०।
मुसलमानी ने मुझपर मोह का जादू चलाया था;
उसीकी राह में मैंने क़दम अपना बढ़ाया था।
सुरीले शब्द उसके गूँजते हरदम थे कानों में;
बसी थी सुंदरी मेरे हृदय में और प्रानों में।
उसका अभिमान घटा—मेरा वह पाप कटा;
ख़ूब शैतान हटा—मोह का परदा फटा।
धर्म भी ख़ूब बचा मेरा तो जाते जाते;
पाया पीने को अमृत मैंने जहर खाते खाते।
धन्य ईश्वर तुम्हारी है माया—मुझे०।

(प्रस्थान)

छठा दृश्य

स्थान—पहाड़ी घाटी

सोफ़िया

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

सोफ़ि०—जनाब आली ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए !

(नारायणराव का प्रवेश)

नारा०—कुछ डर नहीं है। क्या हुआ, क्या हुआ ?

सोफ़ि०—पहले मुझे आश्रय दीजिए। फिर मैं सब हाल कहता हूँ।

नारा०—तुम्हें जो साथी मैंने दिया था, वह कहाँ गया?

नेपथ्य में—हुज़ूर, होशियार, दुशमन पास है—मैं पकड़ लिया गया हूँ।

सोफ़ि०—वह आ गया—जल्द मुझे कहीं छिपा रखिए, जिसमें वह मुझे खोजकर पा न सके।

नारा०—डर नहीं है ! मैं यहाँ पर पाँच हज़ार प्रचंड नागपुरियों की सेना लिए इस राह की रक्षा कर रहा हूँ। कायरों की तरह तुमको छिपाकर क्यों रक्खूँ ? अगर कोई तुम्हारा पता जानना चाहेगा तो मैं उससे छिपाऊँगा क्यों ? तुम यहाँ पर बेखटके खड़े रहो। बताओ, तुमपर

हमला करने के लिये कौन आ रहा है ?

(दादाजी का प्रवेश)

सोफ़ि०—वह है—वह, रक्षा कीजिए, नहीं तो मेरी जान जायगी।

(सोफ़िया जाना चाहती है। नारायणराव उसका हाथ पकड़ता है)

नारा०—(दादाजी से) अरे तू कौन है ! बालक को क्यों पकड़ने आया है ?

दादा०—(अनसुनी करके) वाह वाह ! कैसी सुंदर जोड़ी है !

नारा०—चुप रह नराधम नीच ! इज़्ज़त का ख़याल रखकर बात कह।—(निकट से देखकर) कौन, दादाजी महाराज ! आप हैं ?

दादा०—अरे कौन है; मुझे तो पहचान ही नहीं पड़ता—कौन है !

नारा०—आपके ऐसे आचरण हैं ! मुख से तो आप देवता जान पड़ते हैं, लेकिन अपने भीतर ऐसी पिशाच-मूर्ति छिपाए हुए हैं !

दादा०—छोड़ दो, अपना भला चाहो तो छोड़ दो। नहीं तो मैं—

(आगे बढ़ता है)

सोफ़ि०—अजी, मुझे बचाओ।

नारा०—सावधान ! अगर एक पग भी और आगे बढ़े

तो समझे रहो कि यह तेज़ तरवार की नोक तुम्हारे पेट के भीतर होगी !

दादा०—तरवार ! पेट के भीतर होगी ! किसके ? मेरे या तुम्हारे ? तुम्हारे हुई तो मेरे ही हुई ! ब्राह्मण की हत्या हो गई ! (दादाजी का प्रस्थान)

नारा०—किसी आदमी का चेहरा देखकर उसके हृदय को पहचानने की कोशिश करना बड़ी भूल है !

सोफ़ि०—ठीक कहा जनाब, बड़ी भूल है !

नारा०—इस आदमी (दादाजी) को देखकर और इसकी बातें सुनकर एक दिन मुझे उसपर बड़ी श्रद्धा हो गई थी। आओ भाई, तुम मेरे साथ आओ।—(सोफ़िया हँसती है) यह क्या तुम हँसते क्यों हो ?

सोफ़ि०—आप जाइए, मेरा सलाम लीजिए। (फिर हँसती है)

नारा०—यह क्या भाई ! तुम्हारा यह कैसा आचरण है !

सोफ़ि०—आप मुझे साथ ले जाने के लिये मत ठहरिए। जहाँ जा रहे हों, जाइए।

नारा०—और तुम ?

सोफ़ि०—मैं अपनी राह जाऊँगा।

नारा०—कैसे जाओगे ?

सोफ़ि०—जैसे इतनी दूर आया हूँ, वैसे ही आगे भी चला जाऊँगा।

नारा०—मगर आगे चलकर फिर अगर कोई तुमपर हमला करे ?

सोफ़ि०—अगर कोई आक्रमण करेगा तो फिर आप जैसे और किसी भले आदमी अर्थात् भोले भाले सिपाही की सहायता लेकर अपने को बचा लूँगा।

नारा०—क्या कहा !

सोफ़ि०—हमला कोई नहीं करेगा। मैं पठान का बच्चा हूँ। मौत भी हम लोगों के पास डरते डरते आती है।

नारा०—अभी यही बुड्ढा जो आया था।

सोफ़ि०—कोई भी नहीं आया, आप समझ नहीं सके। आपकी सहायता से उस बुड्ढे को धोखा देकर मैंने भगा दिया।

नारा०—तू कहता क्या है बालक ! तूने मुझसे भी छल किया ? मैंने तेरे कहने में आकर एक साधु पुरुष को कटु वचन कहे !

सोफ़ि०—ऐसी कड़ी बातें कहने के लिये तो मैंने आपसे कहा नहीं था ! बचाने को कहा था, सो आपने बचा लिया। जनाब, मैं सलाम करके जाता हूँ; मुझे बहुत दूर जाना होगा।

नारा०—पाजी बालक ! विपत्ति का ढोंग दिखाकर तूने मुझको धोखा दिया !

सोफ़ि०—(हँसकर) आप ख़फ़ा क्यों होते हैं जनाब ?

अभी तो आप ही कह रहे थे कि आदमी का चेहरा देखकर उसके हृदय को पहचानने की कोशिश करना बड़ी भूल है।

नारा०—जा, समझ गया; अभी यह जगह छोड़ दे। तेरे भाग्य से मुझे तुझसे स्नेह हो गया है। नहीं तो जंजीर में बाँधकर तुझे क़ैद कर रखता। जा छली, चला जा।

सोफ़ि०—(स्वगत) जाने दो, दादाजी के हाथ से छुटकारा पा गई। वह मौत की तरह मेरे पीछे पीछे आए थे। उनके हाथ में पड़ते पड़ते बच गई। अब वह दूर निकल गए होंगे। लेकिन यह क्या हुआ ? हाथ पकड़ने से सारा शरीर काँप उठा; बातें सुनकर हृदय उछल पड़ा। तिसपर भी इतना बड़ा अंतर है—वह ब्राह्मण और मैं मुसलमानी हूँ। खुदा, मेरी समझ में कुछ नहीं आता। दादाजी पहले ही समझ गए थे और इसीसे वह मुझे अपने साथ लिए जाते थे। अब यहाँ ठहरूँ—या चली जाऊँ ? कहाँ जाऊँ ? या खुदा, कहाँ जाऊँ ? नहीं, दादाजी की वह तीखी नज़र जैसे अभी तक दूर से मुझपर पड़ रही है। ना, चली ही जाऊँ।

नारा०—अब सोच क्या रहा है बालक ? जा।

सोफ़ि०—जो हुक्म जनाब आली। (प्रस्थान)

नारा०—यह कैसी विडंबना है ! एक छली बालक के कहने में आकर मैंने कैसा निंदित काम कर डाला ! एक

साधु पुरुष को कठोर वचन सुनाकर दुतकार दिया ! लेकिन यह बालक कौन है ? कहाँ से आया—और क्यों आया ? दादाजी इसके पीछे आए—क्यों आए ? यह बालक क्या सचमुच ख़ाँजहाँ लोदी का कोई है ? लेकिन जब तक मैं मालवे में रहा तब तक तो इस बालक को मैंने वहाँ कभी नहीं देखा ! वही तो ! मैंने यह क्या किया ? जहाँपनाह की आज्ञा को टालकर उसके विरुद्ध काम कर डाला ! एक अपरिचित बालक के स्वर पर रीझकर मैंने अपने कर्त्तव्य को छोड़ दिया ! (महाबतख़ाँ का प्रवेश)

महा०—नारायणराव !

नारा०—यह क्या ! जनाबआली हैं ! क्या ख़बर है ?

महा०—तुम्हारे यहाँ की क्या ख़बर है ?

नारा०—शत्रु का कुछ भी पता नहीं चला। शत्रुपक्ष का कोई भी आदमी इधर नहीं देख पड़ा।

महा०—मुझे भी पता नहीं मिला—किसी को भी शत्रु नहीं देख पड़ा। बड़े वेग से लोदी मालवे की तरफ़ भागा है ! जान पड़ता है, वह एक दिन में सौ कोस पर पहुँच गया। अब तक शायद मालवे की सरहद पर पहुँच गया होगा। पीछा करना बेकार हुआ। होने दो, लेकिन मैं पीछा करना छोड़ूँगा नहीं। ताज्जुब है नारायणराव ! उसकी बेगम और बेटा-बेटी दूसरी राह से गए हैं। उनका भी कुछ पता नहीं मिला।

नारा०—अब आज्ञा दीजिए, मुझे क्या करना होगा।

महा०—तुम सब नागपुरी सेना लेकर झाँसी की सड़क पर जहाँपनाह की पल्टन से मिल जाओ। मैं इधर जाता हूँ। कहा तो, पीछा करना नहीं छोड़ूँगा। (चौंककर) वह क्या! वह पहाड़ी घाटी के भीतर कौन जा रहा है नारायणराव?

नारा०—वह एक मुसलमान का बालक है।

महा०—बालक! इस जगह कैसे आया?

नारा०—सो तो नहीं मालूम। और कहाँ जा रहा है, सो भी नहीं जानता।

महा०—किधर से गया है?

नारा०—इसी राह से।

महा०—पकड़ा क्यों नहीं? तुमको क्या हुक्म था?

नारा०—मैं उसे पकड़ नहीं सका।

महा०—पकड़ नहीं सके! क्या कहा कायर!

नारा०—ख़बरदार सरदार, ज़बान सँभालकर बात करना! मैं कायर नहीं हूँ। मैंने बालक को पकड़ने के लिये हथियार नहीं उठाया है। मैंने पिता के अपमान का बदला चुकाने के लिये एक सिंह के विरुद्ध हथियार उठाया है। मैंने जिसके विरुद्ध हथियार उठाया है उसके आगे आप सब साम्राज्यविजयी वीर हीन तुच्छ लोमड़ी की तरह हैं।

महा०—विश्वासघातक! अभी बादशाह की दी हुई तरवार रख दो।

नारा०—अच्छा, अभी फेंके देता हूँ।

(दादाजी का प्रवेश)

दादा०—हाँ हाँ, फेंको मत, फेंको मत। हाथ की तरवार कोई नहीं फेकता भैया! क्या हुआ, मैं अभी फ़ैसला किए देता हूँ।

महा०—ऐसी ही बुज़दिली के भरोसे तुम लोदी से बाप का बदला चुकाने चले हो?

नारा०—बदला चुकाने चला था, लेकिन भूलकर महाबतख़ाँ की सहायता लेने आया। यह मैं नहीं जानता था कि जहाँगीर-विजयी वीर अपने घर में लोदी से परास्त होकर उनकी बेगम और बाल-बच्चों के विरुद्ध हमला करेगा। मेरी आँखें खुल गई हैं! मुग़ल की ग़ुलामी करने की मुझे खूब सज़ा मिल गई! इस तरवार को मैं अभी फेंक दूँगा।

दादा०—हाँ हाँ, फेंकना मत—फेंकना मत। मौक़ा मिल गया है, बदला लो, तरवार मत फेंको। तुम ब्राह्मण हो, फिर इतना क्रोध क्यों करते हो? देखो, यह मुग़ल सेनापति तुम्हारा हित चाहनेवाले हैं। इनपर तुमको इतना क्रोध नहीं करना चाहिए। बदला लेने की तुम प्रतिज्ञा कर चुके हो, प्रतिज्ञा भंग मत करो। बदला लेना ही होगा। हाँ, यह ठीक निश्चय कर लो कि किस तरह लोगे। स्वधर्म-त्यागी सगरजी के पुत्र मेरे इस भानजे की तरह लोगे या ब्राह्मण की तरह लोगे?

नारा०—क्या कहा दादाजी महाराज !

दादा०—क्रोध क्यों करते हो भैया ? देखो, महाबतख़ाँ मुग़लों के सेनापति हैं। उनका नाम बड़ा है और काम भी बड़े हैं। उन्होंने क्रोध में आकर मामा का भी लिहाज़ नहीं किया। लो—हथियार लो—तुम अभी नासमझ बच्चे ही हो—अरे बादशाह का दिया हथियार है ! जवाहरात-जड़ा लड़कों को बहलानेवाला हथियार है। लो—बदला लो ! तुम भी ख़ाँजहाँ का ख़याल बेकार करके अपना काम क्यों बिगाड़ रहे हो ? बस, केवल मान ही जो कुछ है सो है। बाप के अपमान का बदला चुकाओ। लो तरवार—ख़ाँजहाँ को, उसकी बेगम को, बाल-बच्चों को, नवाबी को काट डालो।

नारा०—ठीक ठीक, इतने दिनों के बाद मेरे जीवन-मरण का प्रश्न हल हो गया। आप मेरे गुरु हैं; आपने मुझे कर्त्तव्य की राह दिखा दी। दादाजी महाराज, एक दिन मैं आपके घर अतिथि होकर रहने के लिये गया था। उस दिन मैं तृप्त नहीं हो सका था। इतने दिनों के बाद आज आपने उत्तम उपदेश देकर मुझे अच्छी तरह तृप्त कर दिया। चंडाल के भाव को प्राप्त ब्राह्मण-पुत्र की आँखें आपने खोल दीं। बिना ख़ून-ख़राबी के क्या बदला नहीं लिया जा सकता ? (तरवार फेंक देता है) यह बादशाह की दी हुई तरवार मैंने फेंक दी। (महाबतख़ाँ से) लो,

आप लोगों का दिया हुआ अनुग्रह मैं आप लोगों को लौटाए देता हूँ। (वर्दी उतार कर फेंक देता है) जिस उच्च पद को पाने का मैं अधिकारी न था वही उच्च पद आप लोगों ने मुझे दिया। लेकिन किसलिये ? अपने मतलब से—मेरे पहले के मालिक को अपमानित करने के इरादे से। अब सब मैं समझ गया—आप लोगों ने मुझे धोखा दिया। (आजफ़ का प्रवेश)

आजफ़—क्या ख़बर है सेनापति ?

महा०—(नारायणराव से) ख़बरदार अकृतज्ञ ब्राह्मण ! अकृतज्ञता दिखाने से—ऐसी मूर्खता का परिचय देने से—अभी क़ैद कर लिए जाओगे।

नारा०—क़ैद कर लो। अगर न करोगे तो मैं पहले ही से कहे रखता हूँ कि आज की इस घड़ी से मैं मुग़ल-बादशाहत का दुश्मन हूँ।

आजफ़—क्या, दुश्मन !—कोई है ?

महा०—अभी दुश्मन को क़ैद कर लो।

(शाहजहाँ का प्रवेश)

शाह०—वज़ीर, इस क्षुद्र चींटी के समान मनुष्य को क़ैद करके अपने स्वामी की शान में बट्टा मत लगाना—जाओ ब्राह्मण, चले जाओ। जाकर अपनी शक्ति भर बादशाह की दुश्मनी करो। चले आओ सेनापति, अभी तक लोदी का कुछ पता नहीं चला। एक तुच्छ पुरुष

से उलझकर वृथा समय गँवाकर काम मत बिगाड़ो।

(जासूस का प्रवेश)

जासूस—जहाँपनाह !

शाहजहाँ—क्या ख़बर है ?

जासूस—लोदी का पता चल गया।

शाह०—वज़ीर !

आजफ़—चले आइए सेनापति—अब और एक घड़ी की भी देर मत करिए।

शाह०—लो दादाजी, यह तरवार उठाकर इस ब्राह्मण को दे दो। बेचारा बादशाह से दुश्मनी करने चला है; लेकिन पास कोई हथियार भी नहीं है। रात को अगर एक कुत्ता भी हमला करे तो वह उससे अपनी रक्षा नहीं कर सकता।

दादाजी—अहा, सम्राट् कैसे दयालु हैं ! भैया, ऐसी दया पाकर उससे अपने को ख़ाली मत रक्खो।

(शाहजहाँ, आजफ़, महाबतख़ाँ और जासूस का प्रस्थान)

नारा०—दादाजी महाराज, आशीर्वाद दीजिए।

दादा०—अरे भैया भूदेव, तुमने ग़जब कर डाला—ग़जब कर डाला।

नारा०—हाथ उठाकर आशीर्वाद दीजिए।भूदेव अब भूदेव कहाँ रहे ? मैं ब्राह्मणत्व से हीन चंडाल के तुल्य हूँ। वे आर्य जीवन के आधार-स्वरूप, मानव-जीवन के गर्व की सामग्री,

सर्वत्यागी होने पर भी महा शक्तिशाली ब्राह्मण अब कहाँ हैं ? महाराज, इस अभागे, अहंकारी, अपने पद से भ्रष्ट ब्राह्मण संतान पर कृपा करो। उसे सुमार्ग दिखाओ—सुमार्ग दिखाओ।

(प्रस्थान)

दादा०—(तरवार से) तुझे किसी ने नहीं लिया ! हीरा-मोती-मानिक की पोशाक पहने रहने पर भी तू राह में पड़ी रही ! दादू मियाँ—अहिंसा धर्म का प्रचार करने वाले ऋषियों के पुत्रों के हाथ में तरवार की शक्ति का क्या कहना ! तूने एक दिन इस मृत्युलोक में लोगों के प्राण बचाने का काम किया था। वही तरवार आज मिट्टी में पड़ी हुई है। यह भी कहीं देखा जा सकता है ! दादू, उसे उठा—उसे उठा; उसका आदर कर। (तरवार उठाकर) मेरा सर्वस्व, मेरी जान—एक दिन तू मनुष्यों की रक्षा करती थी, आज मनुष्यों का ख़ून पीती है ! मेरी जान, बोल—सोने की जड़ी तरवार, बंसी होकर मोहिनी रागिनी सुना—ऊँचे स्वर से जगत् को प्रेम की अभय-वाणी सुना।

पर्दा गिरता है

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—रास्ता

शाहजहाँ और आजफ़

शाह०—इतनी दूर तक आए। मगर अभी तक कहीं लोदी का कोई चिह्न भी नहीं देखा गया।

आजफ़—अगर बराबर की तेज़ी से भी हम उसका पीछा करते आए हों तो भी हम में और लोदी में दिन भर की राह का फ़ासला है। तिस पर हम चाहे जितनी तेज़ी से क्यों न पीछा करें, लोदी की चाल से हमारी चाल की बराबरी नहीं हो सकती। वह प्राण बचाने के लिये भाग रहा है और हम उसे पकड़ने के लिये पीछा कर रहे हैं। मुझे मालूम हुआ है कि राह में रुकावट के खटके से उसने अपनी बेगम तक को साथ नहीं लिया। अपना मान बचाने के लिये जिसने स्त्री और कन्या के प्राणों की भी ममता नहीं रक्खी उसकी बिजली की ऐसी तेज़ चाल का अनुमान भी हमारी सेना नहीं कर सकती।

शाह०—वज़ीर, तुमसे छिपाने की बात ही क्या है?

असल तो बात यह है कि लोदी मान के लिये भागा है और मैं जान के लिये उसका पीछा कर रहा हूँ। मुझे खटका है कि अगर वह कुशल से अपने देश पहुँच गया तो फिर मेरी जान का ग्राहक हो जायगा।

आजफ़—इस तरह अपना बुरा सोचना—तुच्छ लोदी के भय से ऐसी घबराहट दिखाना हिंदोस्तान के बादशाह को नहीं सोहता!

शाह०—मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता। जिस तरह हो, आप लोदी को मालवे के भीतर पैर न रखने दें। दक्खिन की पठानों की फ़ौज से उसे अलग कर रक्खें। दक्खिन के सभी राजा लोदी को मानते हैं। मालवे में पहुँचते ही लोदी उनसे सहायता माँगेगा और वे भी खुशी के साथ लोदी की सहायता करने के लिये चले आवेंगे। तब फिर बिना पानीपत की लड़ाई के हिंदोस्तान फिर पठानों के हाथ में चला जायगा। वज़ीर, छल-बल-कौशल से, जिस तरह हो, लोदी का मालवे में पहुँचना रोक रक्खो।

आजफ़—तो जहाँपनाह सुनिए। आगरे का तख़्त-ताऊस पाने की आपको कितनी आशा थी? जिस भाग्य ने आपको दक्खिन के जंगल से खींच लाकर गद्दी पर बिठाया है, वही भाग्य क्या इस समय लोदी के मालवे के भीतर जाने में पहाड़ की ऐसी बाधा नहीं डाल सकता?

इस समय किसी कौशल से ख़ाँजहाँ लोदी का जाना रोकने की कोशिश करना पागलपन के सिवा और कुछ नहीं है। आप जोश के मारे पीछा करते चले आ रहे हैं। उस जोश में रुकावट डालना गुलाम का काम नहीं—यही सोचकर बंदा बिना उज्र किए साथ चला आया है। लेकिन मैंने जिस घड़ी सुना कि ख़ाँजहाँ अपनी बेगम और बाल-बच्चों को छोड़कर चल दिया है उसी घड़ी मैंने समझ लिया कि वह मालवे पहुँच गया। मन-ही-मन मैंने उसकी बुद्धिमानी की बड़ी तारीफ़ की है। लोदी समझ गया था कि बेगम और बेटी को साथ ले जाने से वह किसी तरह उनकी रक्षा नहीं कर सकेगा। साथ ही अगर वह उनकी रक्षा करने की वृथा चेष्टा करता तो उसकी स्वाधीनता का नाश अवश्य ही हो जाता।

शाह०—अगर लोदी अपने परिवार को यहीं छोड़ जाता तो मैं क्या इतना हीन और नीच हूँ वज़ीर, कि लोदी की बेगम और बेटी की बेइज़्ज़ती करने पर उतारू हो जाता?

आजफ़—बेशक उच्च, उदार विचारवाले शाहंशाह के यहाँ नवाब की बेगम और बेटी वग़ैरा की ज़रा भी बेइज़्ज़ती न होती। लेकिन तो भी अपने परिवार की इज़्ज़त बचाना लोदी के हाथ में तो न रहता! सभी बातों के लिये उसे आपके अनुग्रह पर ही भरोसा करना पड़ता।

इसीसे मैं कहता हूँ कि बेगम और बेटी की रक्षा का काम ख़ुद उन्हीं के हाथ में सौंपकर ख़ाँजहाँ एक तरह से आगरे में ही हम लोगों को हरा गया है। इस समय उसका हारना ईश्वर के हाथ में है। मैंने तो लोदी की आशा एक दम छोड़ दी है। मैं, आप, बेशुमार मुग़लों की सेना, कोई भी नवाब को रोककर पकड़ नहीं सकता। केवल उसकी बदनसीबी ही उसे रोक सकती है। जहाँपनाह, अगर उसके दिन ख़राब आ गए हैं तो इतनी बुद्धिमानी करने पर भी वह उबर नहीं सकता। जहाँपनाह, ख़ुदा को याद कीजिए। उसके सिवा और कोई आपकी बात नहीं बना सकता। (जासूस का प्रवेश)

शाह०—क्या ख़बर है ?

जासूस—जहाँपनाह, बहुत ही अच्छी ख़बर है। चंबल नदी में एकाएक पानी बढ़ गया है। बड़े ज़ोर की बाढ़ आ गई है। दोनों किनारों में दूर तक पानी फैल गया है। ख़ाँजहाँ अपनी सारी सेना लिए शाम से अब तक वहीं बैठा हुआ है—उस पार नहीं जा सका।

शाह०—वज़ीर !

आजफ़—मैं तो आपसे कह ही चुका हूँ कि ख़ुदा आपका मददगार है। ख़ुदा का शुक्रिया अदा करके इसी घड़ी आगे बढ़िए। ख़ाँजहाँ को ख़ुदा ने ही ख़तरे में डाल दिया है। आइए, जल्द आइए, ख़ुदा के दिए हुए इस

अच्छे मौक़े को हाथ से न जाने दीजिए। देर न कीजिए।

शाह०—ईश्वर, तुम्हें हज़ार हज़ार धन्यवाद हैं।

जासूस—प्राण बचाने के लिये नदी पार होने की कोशिश करने में लोदी ने अपनी बहुत कुछ हानि कर डाली है। उसकी बहुत सी सेना बढ़ी हुई नदी की धारा में बह गई है। लोदी पागल सा हो रहा है; वह अपनी सफ़ेद दाढ़ी के बाल उखाड़ता हुआ भाग्य को, नदी को, यहाँ तक कि ईश्वर तक को गालियाँ दे रहा है।

शाह०—वज़ीर, तुम्हारी अनुमान-शक्ति की बलिहारी! बिजली की पीठ पर बैठकर भी अगर मैं लोदी का पीछा करता तो भी उसे नहीं पकड़ पाता। ईश्वर, तुमने अपने इस दीन दास पर अनुग्रह करके उसकी ऐसी तेज़ चाल को रोक दिया है। तुम्हें अनेक धन्यवाद हैं! और ऐ चंबल नदी, तूने जिस जगह पर मेरे लाखों सिपाहियों का काम करके ख़ाँजहाँ लोदी को रोक रक्खा है उस तेरे पवित्र घाट पर मैं एक बड़ी लागत की मसजिद बनवाऊँगा।

आजफ़—और सेनापति महाबतख़ाँ? उनकी क्या ख़बर है?

जासूस—अब तक शायद उन्होंने लोदी की सेना के पिछले हिस्से के पास पहुँचकर हमला शुरू कर दिया होगा। वह बिजली की तरह तेज़ चाल से गए हैं।

आजफ़—जहाँपनाह, आप पीछे अपनी पल्टन लेकर

आइए। मैं अब यहाँ दम भर भी नहीं ठहर सकता। घने जंगलों से घिरी पहाड़ी राह ठहरी और लोदी के तीन सौ सिपाही भी ऐसे हैं कि ऐसे-वैसे तीस हज़ार भी उनका सामना नहीं कर सकते ! मैं अभी महाबत को कुमक पहुँचाने के लिये जाता हूँ।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—रास्ता

गुलनार, अजमत, रज़िया और बाँदी

अजमत—मा, घड़ी भर यहाँ विश्राम कर लेने से शायद कुछ हानि न होगी।

गुल०—विश्राम! कहाँ विश्राम करूँगी बेटा! उस शैतान की सल्तनत के बाहर क्या हम लोग आ गए?

अजमत—अंधकार में कुछ ठीक ठीक समझ नहीं पड़ता। कुछ ही दूर पर चंबल नदी की रेती चमक रही है। हम लोग बिना जानी हुई राह से चल रहे हैं। जान नहीं पड़ता, चंबल यहाँ से कितनी दूर पर है। अपने साथियों में से एक को पता लगाने के लिये मैंने भेजा है।

गुल०—अच्छा जब तक वह लौटकर न आवे तब तक यहाँ विश्राम करो!

अज०—विश्राम का प्रयोजन तुमको नहीं भी हो सकता; लेकिन मा, रज़िया अभी बिल्कुल बालिका है—दिन भर और रात भर लगातार वह हम लोगों के साथ चली आई है। ज़रा भी विश्राम न करने से वह ज़िंदा नहीं रह सकती।

गुल०—क्यों बेटी रज़िया, यहाँ विश्राम करोगी ?

रज़िया—कहाँ, मैंने विश्राम की बात तो किसी से नहीं कही !

गुल०—(दासियों से) और तुम लोग ?

बाँदियाँ—मुग़लों के देश में हम विश्राम नहीं करेंगी।

गुल०—तपी हुई रेती में चलने से हम लोगों के पैर जले जाते हैं—यही देखकर तुम अजमत, क्या हमसे विश्राम करने के लिये कहते हो ?

अजमत—ख़ैर, तो जब तक हमारा आदमी राह का पता लगाकर नहीं आता तभी तक तुम लोग विश्राम कर लो।

गुल०—जब तक उज्जैन-गढ़ के झंडे के नीचे, निर्मल जल-वाली शिप्रा नदी के किनारे, अपने पिता—मेरे स्वामी—के चरणों के पास, तुम मुझे नहीं पहुँचा सकते तब तक विश्राम का नाम भी अपनी ज़बान पर मत लाओ अजमत !

अजमत—सदा से तुमको सुख में रहने का अभ्यास है। ऐसी दुर्दशा में तुम, तुम्हारी बेटी, यहाँ तक कि तुम्हारी बाँदियाँ तक भी कभी नहीं पड़ीं मा ! अपने शरीर की दशा देखकर ही मैं तुम्हारे शरीर की दशा को समझ रहा हूँ। जिस मतलब से आगरा छोड़कर, इतना कष्ट उठाकर, हम लोग इतनी दूर आए हैं, वह कहीं लगातार चलते रहने के कारण तुम लोगों का जीवन न रहने से मिट्टी में न मिल जाय—मुझे यही खटका है।

गुल०—हम लोगों की जान चली जाय वह भी अच्छा; लेकिन तो भी विश्राम का नाम मत लो। मैं अपने सारे सुखों को आगरे में ही तिलांजलि दे आई हूँ। तुम नहीं समझते अजमत, कायर छोटे आदमी भी जो काम करने में हिचकते हैं वही काम तुम्हारे वीर पिता को करना पड़ा है—शत्रु के चंगुल में अपनी औरत और बेटी को छोड़कर उन्हें आगरा छोड़ जाना पड़ा है। उनके दिली सदमें को मेरे सिवा दूसरा कोई समझ नहीं सकेगा। मुझे न देख पावेंगे तो सारी बादशाहत मिलने से भी उनके दिल का सदमा नहीं मिटेगा। मुर्दा या ज़िंदा, जिस तरह हो, मेरा शरीर उनके चरणों के पास पहुँचा दो। शत्रु ने निश्चय ही हमारा पीछा किया होगा। अगर शत्रु की सेना आकर भिड़ जायगी तो फिर तुम यह काम नहीं कर सकोगे।

अज०—तो फिर, चलो ठहरने की कोई ज़रूरत नहीं है।

गुल०—जाओ बेटी रज़िया, फिर चलने के लिये तैयार हो जाओ।

बाँदी—आओ नवाबज़ादी, तैयार हों।

(रज़िया और बाँदी का प्रस्थान)

गुल०—या खुदा, तू ही इस मुशकिल को आसान करनेवाला है। (एक सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—नवाबज़ादा !

अजमत—क्या है भाई ?

सिपाही—सब ख़तम—चंबल में बड़ी भारी बाढ़ आई है।

अजमत—बाढ़ ! आज कल !

सिपाही—ऊपर पहाड़ पर कहीं शायद बहुत पानी बरसा है। नदी एकदम बढ़कर हाहाकार करती हुई ज़ोर दिखा रही है।

गुल०—ठीक हुआ अजमत, चारों तरफ़ अंधकार ही अंधकार है ! यह और कुछ नहीं, मुझपर ईश्वर का कोप है !!

अजमत—हाय, यह क्या हुआ मा !

गुल०—बाढ़ आने दो; डर क्या है अजमत ? पूछो, केवल एक दफ़ा इस अंधकार से पूछो, तुम्हारे पिता कहाँ हैं ! हज़ारों युद्धों में जय पानेवाले मालवे के पराक्रमी नवाब कहाँ हैं ? यह चंबल तो कभी उनका उस पार जाना नहीं रोक सकी !

(नेपथ्य में सैनिकों का कोलाहल सुन पड़ता है। दूसरे सिपाही का प्रवेश)

२ सिपाही—नवाबज़ादा ! दुश्मन आ गया—जल्द, इस स्थान को छोड़िए।

अजमत—दुश्मन ! असंभव है ! आकाश के पक्षी भी इतनी तेज़ी से नहीं चल सकते !

गुल०—अजमत, तुम जाओ।

अज०—कहाँ?

गुल०—अपने पिता के पास। संभव है कि तुम्हारे पिता की भी ऐसी ही अवस्था हो।—तो अपने साथ के इन सौ सिपाहियों की सहायता उन्हें पहुँचाओ।

अज०—और तुम?

गुल०—मुझे छोड़ जाओ।

अज०—कहाँ? किसके पास?

गुल०—यहीं, मुझे मेरे ही भरोसे पर छोड़ जाओ।

अज०—यह मुझसे न हो सकेगा।

गुल०—मैंने पक्का इरादा कर लिया है, मैं अपने कारण तुम्हारे पिता को संकट में पड़ने नहीं दूँगी—उन्हें शत्रुओं के हाथ में पड़ने न दूँगी।

अज०—लेकिन मुझसे यह किसी तरह न हो सकेगा। पिता के सामने ही तुमको ऐसा इरादा करना उचित था। पिता की शक्ति पर मुझे पूरे तौर से विश्वास है। दोहाई है मा, ऐसा करने की आज्ञा मत दो कि अगर मैं कभी पिता के सामने पहुँच सकूँ तो वहाँ मुझे सिर झुकाकर खड़ा होना पड़े।

(नेपथ्य में सेना का कोलाहल सुन पड़ता है)

गुल०—वह दुशमनों की फ़ौज आ गई। भागने की राह चंबल नदी ने रोक रक्खी है। तुम किस तरह हम

लोगों की रक्षा करोगे ?

अजमत—मा, अपने लड़के की ताक़त पर थोड़ा भरोसा रक्खो । घड़ी भर—दोहाई है मा, एक बार घड़ी भर मुझे दुशमन की ताक़त आजमाने का मौक़ा दो।

गुल०—अच्छा, देती हूं । (अजमतख़ाँ का प्रस्थान)

(रज़िया का प्रवेश)

रज़िया—मा, आज इतना अँधेरा क्यों है ? हम लोग आगरा छोड़कर इतनी दूर भाग आए; पर अँधेरे ने पीछा नहीं छोड़ा ! वहाँ अँधेरा देखकर मैं डरती थी—वही अँधेरा यहाँ भी है ! अँधेरा हम लोगों का पीछा क्यों नहीं छोड़ता मा ? सिपाहियों का शोर-गुल सुनकर मेरा कलेजा काँप रहा है । डर के मारे चारों तरफ़ देखती हूँ, अँधेरे का पर्दा पड़ा हुआ है और कुछ नहीं सूझता। क्यों मा, यह इतना अँधेरा क्यों देख पड़ता है ?

गुल०—इस पापी देश से पुण्य का सूर्य अस्त हो गया है । आसमान के सितारों ने अँधेरे में अपना मुँह छिपा लिया है । रज़िया ! रज़िया ! तुझसे हो सकेगा ?

रज़िया—क्या हो सकेगा मा ?

गुल०—मुँह से कहा नहीं जाता; जैसे कोई ज़ोर करके मुँह को बंद किए देता है । रज़िया ! तुझसे हो सकेगा ?

रज़िया—तुम संकोच क्यों कर रही हो मा ? क्या हो सकेगा ? बोलो, मुझे क्या करना होगा ?

गुल०—बेटी, तू जानती है, तू नवाब साहब की बहुत ही दुलारी, प्यारी लड़की है? इसीसे मैं तुझसे कह नहीं सकती।

रज़िया—तुम्हारे न कहने से मुझे और भी कष्ट हो रहा है मा!—मा, मैंने कौन अपराध किया है?

गुल०—हम सब अपराधी हैं—ईश्वर के निकट अपराधी हैं। उस अपराध का प्रायश्चित्त हम सबों को करना होगा। रज़िया, तेरे माननीय पिता को अपने यहाँ बुलाकर पापी मुग़ल बादशाह ने उनका अपमान किया। अपनी वीरता के बल पर दरबार से वह अपना मान बचाकर इज़्ज़त के साथ निकल आए। इस समय उस मान की रक्षा हमारे हाथ में है। तेरे पिता उस मान की रक्षा का काम मुझे सौंपकर हम सबको छोड़कर चले गए हैं। रज़िया, अधिक बातचीत करने का मौक़ा नहीं है।

रज़िया—जल्द बताओ मा, मुझे क्या करना होगा? मान—मान—मेरे माननीय मानी पिता का मान, जिसका हमें अभिमान है, कभी मिटने न पावेगा! देर न करो मा! बताओ, मुझे क्या करना होगा?

गुल०—मा होकर मैं अपने मुँह से कैसे कहूँ? कहा नहीं जाता! दुशमन बेशुमार सेना लिए हमारा पीछा कर रहा है—सिर पर आ गया है। थोड़े से सिपाही लिए तेरा भाई विपत्ति में पड़ा हुआ है!

रज़िया—साफ़ साफ़ कहो, मरना होगा। पिता की इज़्ज़त बचाने के लिये मरना होगा। मैं पठान की बेटी हूँ, मुझे मौत से डर नहीं है। जल्दी बताओ मा, कब और किस तरह मरना होगा? संकोच मत करो।

गुल०—बेटी, इस अँधेरे के भीतर से मौत हम लोगों की तरफ़ लालच-भरी निगाह से ताक रही है।

रज़िया—मैं मौत को बिल्कुल नहीं डरती। मेरी जान न रहे तो मुझे ऐन ख़ुशी है, मगर पिता की शान रहे, भाई की आन रहे, तुम्हारा मान रहे और लोदी-वंश का अभिमान रहे।

गुल०—शाबास बेटी, शाबास। डर क्या है, मैं साथ चलूँगी—तुझे अपनी गोद में ले चलूँगी। स्वर्ग में हम दोनों मा-बेटियाँ बहादुर नवाब की जयजयकार मनावेंगी।

तीसरा दृश्य

स्थान—पहाड़ी जंगल

ख़ाँजहाँ और उनके सिपाही

ख़ाँजहाँ—और क्या करूँ, अपना काम मैं कर चुका। मनुष्य जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता वह मैंने कर दिखाया। सबेरे आगरे से चला था, शाम से पहले ही सौ कोस राह चलकर यहाँ तक पहुँच गया। राह में बड़े बड़े पहाड़, अंधकारमय जंगल, नदी आदि की अनेक कठिन बाधाओं का बिल्कुल ख़याल नहीं किया। लेकिन अभाग्य से अंत को अपने घर के द्वार पर पहुँचकर लाचार हो गया—एक पग आगे नहीं बढ़ सकता! थोड़े ही फ़ासले पर अपना देश है, पर नहीं पहुँच सकता! आँखों के सामने ही अमृत का सागर लहरें मार रहा है—उसके किनारे ही मैं प्यास के मारे बेचैन हो रहा हूँ। चंबल के उस पार पहुँच जाऊँ तो एक क्या, दस शाह-जहाँ कुछ नहीं कर सकते, पर उस पार पहुँचना असंभव हो रहा है! बाधा, ज़रा सी बाधा है—छोटी सी नदी और थोड़ा सा जंगल है—जिसे साधारण चींटी भी नाँघ जा सकती है; पर मैं नहीं नाँघ जा सकता! जिस

चंबल नदी के भीतर की रेती में धूप से तपे हुए मुसाफ़िर अक्सर पानी पानी चिल्लाते हुए बेचैनी के साथ इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं, वहीं आज सागर का इतना पानी भरा पड़ा है—तेज़ी के साथ पानी का प्रवाह बह रहा है। आकाश में बादल नहीं हैं, किनारे की ज़मीन सूखी पड़ी है, पेड़ और लताएँ सूखी पड़ी हैं, लेकिन नदी में बाढ़ आई हुई है ! भगवान् का ऐसा कोप तुम लोगों में से किसी ने भला और भी कभी देखा है ? ईश्वर, अभागे खाँजहाँ की मौत ही अगर तुमको पसंद है, बेईमान बादशाह की बात बनाकर अपने एक बंदे को अपमानित करने की ही अगर तुम्हारी इच्छा है, तो फिर शाही दरबार में उतने सिपाहियों और बहादुरों के मुक़ाबले में इस बुड्ढे के कमज़ोर हाथों में तुमने हज़ार हाथियों की ताक़त क्यों पैदा कर दी थी ? वहाँ से बचाकर फिर यहाँ क्यों इस मुसीबत में डाल दिया ? बेगम और बेटी को जिसलिये छोड़ दिया था वह मतलब पूरा नहीं होने दिया ? (एक सिपाही का प्रवेश)

१ सिपाही—पानी अभी तक नहीं घटा और बढ़ता ही जा रहा है। क्या करना चाहिए ? क्या हुक्म होता है ?

खाँजहाँ—मैंने खुदादाद को भेजा है। वह अगर किसी उपाय से एक आदमी को भी पार करके मालवे में ख़बर भेज सके तो भी मैं " क्या करना चाहिए " सो

कुछ ठीक कर सकता हूँ। नहीं तो भैया, इस समय क्या करना चाहिए—सो कुछ समझ नहीं पड़ता। (खुदादाद का प्रवेश) चेहरा देखकर ही मुझे मालूम पड़ता है, वह कोई उपाय नहीं ढूँढ़ निकाल सका।

खुदादाद—हुजूर, एक एक करके बारह बहादुर सिपाहियों को नदी की धारा में डुबा दिया। पर कोई उस पार नहीं पहुँच सका। फिर किसी को भेजने की हिम्मत नहीं हुई। ऐसे वेग से धारा बह रही है कि कोई उस पार तैर कर नहीं जा सकता।

१ सिपाही—जहाँपनाह, मुझे हुक्म दीजिए। एक दफ़ा मैं कोशिश करके देखूँ।

ख़ाँजहाँ—नहीं भैया, बस और नहीं। इस महामूल्य मनुष्य-जीवन को मैं वृथा नहीं नष्ट होने दे सकता। एक एक करके इसी तरह मैंने अपने आधे सिपाही हाथ से खो दिए! (नेपथ्य में तोप दगने की आवाज़ होती है)

सिपाही—वह दुश्मन आ गया जनाब।

ख़ाँजहाँ—अब भी न आवेगा? बहुत देर पहले ही आ जाना चाहिए था। (दूसरे सिपाही का प्रवेश)

२ सिपाही—जहाँपनाह!

ख़ाँजहाँ—समझ गया।

२ सिपाही—हम सब लोग तैयार हैं। आज्ञा दीजिए, क्या करना होगा।

ख़ाँजहाँ—बादशाह की सेना कितनी है ? कुछ अंदाज़ कर सके हो ?

२ सिपाही—बेशुमार है ।

ख़ाँजहाँ—अभी कितने फ़ासले पर है ?

२ सिपा०—झंडा फहराते साफ़ देख पड़ता है ।

ख़ाँजहाँ—तब तो वे आ ही गए । जाओ, तुम लोग मरने के लिये तैयार हो जाओ ।

(तेज़ी से दरियाख़ाँ का प्रवेश)

दरिया०—जहाँपनाह ! जहाँपनाह !

ख़ाँजहाँ—क्या ख़बर है ?

दरिया०—जल्द आइए, मेहरबानी करके जल्द आइए । पार होने का एक उपाय मैंने कर पाया है । जंगल से एक बड़ा भारी साँखू का लट्ठा मिल गया है । उसे पानी में बहाने से उसके सहारे दो आदमी उस पार पहुँच सकते हैं । चलिए ।

ख़ाँजहाँ—हे ईश्वर ! मौत के मुँह में पड़ा हुआ हूँ । अधमरा हो रहा हूँ । पर अब भी आशा है ! क्या करना चाहिए खुदादाद ? पार होते होते ही शत्रु आ जायगा ।

दरिया०—आ पड़ेगा क्या, आ पड़ा है । जहाँपनाह, हुक्म—जल्दी हुक्म दीजिए । (अजमत का प्रवेश)

अजमत—पिता ! पिता ! मालवेश्वर !

ख़ाँजहाँ—कौन, अजमत !

खुदादाद—नवाबज़ादा !

दरि०—नवाबज़ादा ! आप यहाँ—अकेले ! हमारी बेगम साहब कहाँ हैं ?

अज०—आओ दरियाख़ाँ, आओ खुदादादख़ाँ—सब आओ।

ख़ाँजहाँ—कहाँ ?

अज०—चले आइए पिता—ज़रा चले आइए।

ख़ाँजहाँ—कहाँ ?

अज०—मा को देखने के लिये।

ख़ाँजहाँ—कायर ! तुम क्या अपनी मा को दुशमन के हाथ में सौंपकर हम लोगों को ख़बर देने आए हो ?

अज०—दुशमन कहाँ है, सो आप जानिए, मुझे नहीं मालूम। मा यहाँ आप लोगों से आगे पहुँच गई हैं। आकर चंबल में बाढ़ आने के कारण आगे नहीं बढ़ सकीं।

ख़ाँज०—धन्य हो मेरी शानवाली बेगम ! तुम धन्य हो ! तुमने आज सब तरह अपने स्वामी को हरा दिया। लेकिन सब वृथा हुआ ! ईश्वर ! इस अपूर्व स्त्री-जाति के गौरव को तुमने जंगल के एक सूनसान कोने में दफ़न किया ! (नेपथ्य में युद्ध का कोलाहल होता है)

दरि०—वह दुशमन आ गया !

ख़ाँज०—क्या करना चाहिए खुदादाद ?

ख़ुदा०—अब क्या करना चाहिए—सो क्या कहूँ जनाब ! काम नहीं हुआ—इस अपमान का बदला नहीं चुकाया जा सका। दरियाख़ाँ—आओ भाई—बाप, मा, बेटे, सब मिलकर इस कठिन पहाड़ी-भूमि में अपने लिये सदा सोने के वास्ते वीरों की सेज बनावें।

अज०—कुछ न करना होगा भाई—तुम लोग एक बार अपनी रानी को देखकर अपने जाने की राह चले जाओ। हम कोई भी कुछ रुकावट नहीं डालेंगे। पिताजी, एक दफ़ा ज़रा आइए, चलकर मालवेश्वरी के मान की रक्षा कीजिए।

ख़ाँज०—इस दीन असमर्थ अभागे से अब उनके मान की रक्षा क्या होगी अजमत ! मान उस मानिनी के साथ चला जा रहा है ! मुझे छुटकारा दो। मैं एक बार चंबल की कराल धारा में फाँदकर कोशिश करके देखूँ। मुसलमान कुल के कलंक शाहजहाँ का नाम दुनिया से मिटाकर तुम्हारी मा के मान की रक्षा करूँगा।

अज०—एक लहमे के लिये—दोहाई है पिता ! लोदी-वंश के मान के लिये चलिए। पिताजी, मैं पैरों पड़कर कहता हूँ, चलिए—एक दफ़ा—देखने के लिये नहीं, उनकी जान बचाने के लिये। मान—लोदी-वंश का अभिमान—रहेगा नहीं—चला जायगा। न जाने से चला जायगा—और उसके ज़िम्मेदार आप होंगे।

ख़ाँज०—पागल, क्यों जाऊँ ? किसलिये जाऊँ ? मान और अभिमान तो तुम्हारी मा के साथ जा रहा है—उसे कौन नष्ट कर सकता है ?

अज०—सियार—कुत्ते—पिशाच—शैतान—ये सब मिलकर उसे नष्ट करेंगे।

ख़ाँज०—अरे पागल, तुम कह क्या रहे हो !

अज०—देख आइए, जान पड़ता है—अब मा ज़िंदा न होंगी।

ख़ाँजहाँ—नहीं हैं !

अज०—नहीं हैं—मा नहीं हैं, बहन नहीं है, बाँदी नहीं हैं, कोई नहीं है।

ख़ुदा०—जितनी जल्दी हो सके, एक दफ़ा जाकर ज़रा देख आइए।

दरि०—अभी जनाबआली, अभी।

ख़ाँजहाँ—स्थिर होकर कहो अजमत। शैतानों ने क्या उन्हें पकड़ लिया है ? पकड़कर क्या उनपर अत्याचार कर रहे हैं ?

अज०—दोहाई है पिताजी, अभी तक बड़े कष्ट से मैं आपसे बातचीत कर सका हूँ। अब मुँह से बात नहीं निकलती। जी चाहे तो जाइए—मा ने आपके मान को बचाया है। अगर आपके कारण मालवेश्वरी का मान गया तो सारी दुनिया की सल्तनत मिलने पर भी आपके

चित्त का खेद नहीं मिटेगा।

ख़ाँज०—तुम लोग तैयार हो जाओ।

ख़ुदा०—हम लोग तैयार खड़े हैं।

(सबका प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—पहाड़ी जंगल

गुलनार

ग़ज़ल—सोहनी

मौत, प्यारी मौत, तू इस ज़िंदगी की जान है;
प्रानपति की शान पर यह जान बस क़ुरबान है।
ज़िंदगी है चार दिन की, कुछ नहीं रहना यहाँ;
शान देकर जान रखता, वह बड़ा नादान है।
आओ बहनो, आबरू अपनी बचाएँ आप हम;
वीरता से काम लें, वह आ रहा शैतान है।
एक दिन मरना ही होगा, यह ज़रूरी बात है;
फिर न क्यों वह मौत हो, जिसमें बड़ाई-मान है।

गुल०—धीरे !—धीरे ! फूलों के साज से—फूलों के हार से—अपने इस शरीर की नाव को फूलों से सजा-कर—अपने स्वामी के अनंत गौरव के मंदिर की स्थापना करने के लिये, जीवन की नदी पार होकर, सदा सुगंध से भरे फूलों के दिव्य जगत् में चली जाऊँगी। सखियो, बहनो, तुममें से कौन जायगी, सो आवे—समय बीता जाता है। धीरे !—धीरे ! शैतान चारों ओर से चुपके

चुपके अपनी तेज़ नज़र हमारी ओर डाल रहा है ! उसे धोखा देकर, कोई न देखने पावे—कोई न सुनने पावे, आओ—चल दें। कौन आवेगा—आओ।

(लौंडियाँ सहारा दिए हुए रज़िया को लेकर प्रवेश करती हैं)

रज़िया—मा, मैं पहले आई हूँ।

गुल०—तू धन्य है बेटी रज़िया ! पहले चलने का गौरव तूने ही पाया ! आ बेटी, तेरी घायल देह को छाती से लगा लूँ। यह पवित्र रुधिर की धारा केवल धरती को ही क्यों ठंडा करे, दम भर के लिये तेरी मा की छाती को ठंडा करे।

रज़िया—कहो मा, पिता की इज्ज़त बच गई ! कहो मा, मालवेश्वरी का सब संकट दूर हो गया। मा, बोल बंद हुआ जाता है। मैं देख रही हूँ, आकाश में अनेकों देवदूत जैसे कहीं जा रहे हैं। जैसे किसी को लेने जा रहे हैं। उनके सिर पर सोने के मुकुट, हाथ में सोने के दंड हैं। बोल बंद हुआ जा रहा है—

गुल०—अब और बोलने की ज़रूरत क्या है बेटी ? चल रज़िया, चल। हम भी उन्हीं देवदूतों के साथ उसी पवित्र स्थान को चलेंगी।

रज़िया—समझ गई, देख पारही हूँ, वे—वे—भाई अजमत को और पिता को लेने के लिये जा रहे हैं ! मा ! मा ! कैसा मधुर मनोहर गीत का सुर सुन पड़ रहा है !

यहीं—इसी चंबल नदी के किनारे पर !

गुल०—(बाँदियों से) कौन इस पवित्र राह की यात्रा करने को तैयार है ?

बाँदियाँ—हम सब चलने को तैयार हो आई हैं।

गुल०—जो लाचार होकर जाने को तैयार हो वह मत चले। जो आशा के फेर में पड़कर इस ज़िंदगी को ही सब कुछ समझती हो वह मत चले। जो ख़ुशी और जोश के साथ चलना चाहे वह चले। जो कटार की लपलपाती हुई तेज़ धार के सामने गर्व के साथ अपनी छाती बढ़ा सके वही आवे।

बाँदियाँ—हम सब इसी के लिये तैयार होकर आई हैं।

गुल०—तो फिर अब देर काहे की है—आओ, शैतान के हमले से बचने के लिये मौत के पवित्र पर्दे में बढ़ चलो। इस पाप-राज्य से स्वर्ग के पवित्र राज्य में पहुँचने के लिये पैर बढ़ाओ। धीरे—धीरे—फूलों से सजकर मंगल-यात्रा कर दो।

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—पहाड़ का दूसरा हिस्सा

ख़ाँजहाँ, अजमत और सेना

ख़ाँजहाँ—कहाँ हैं वे लोग अजमत, अंधकार में तो कुछ सूझ नहीं पड़ता—कुछ जान नहीं पड़ता। बेगम कहाँ हैं. बेटी कहाँ है ? कोई बाँदी भी नहीं देख पड़ती !

सिपाही—आइए नवाबज़ादा, इधर पता लगावें।

ख़ाँजहाँ—अब पता लगाने के लिये समय नहीं है।

अजमत—मैं आपके पैरों पड़ता हूँ जहाँपनाह, और ज़रा पता लगा लीजिए।

ख़ाँजहाँ—इतना तो ढूँढ़ा, और कहाँ तक ढूँढ़ूँ ? अंधकार में अब कहाँ उन लोगों को खोजूँ? अपने को विपत्ति में पड़ा देखकर और यहाँ से निकल जाना सहज न जानकर, उन लोगों ने अपनी रक्षा के लिये शायद पहले ही से चंबल में फाँदकर जान दे दी है। पता लगाने में व्यर्थ समय नष्ट होगा—खोजना बेकार है। बस अजमत, काम को भरभंड मत करो।

अजमत—जहाँपनाह, मैंने इसी जंगल में कातर चिल्लाहट सुनी है। एक नहीं—बहुत सी आवाज़ें थीं। साथ

ही मरते समय का कराहना भी सुन पड़ा था; पिताजी, यहाँ निश्चय कुछ मौत हुई हैं। जनाब, इसमें शक नहीं कि मेरी मा अब नहीं हैं, बहन नहीं है, बाँदियाँ नहीं हैं, कोई नहीं है। मैं पैरों पड़ता हूँ पिताजी, पता अवश्य लगाइए। मेरी मा अगर जीती होतीं तो मैं आपसे घड़ी भर भी ठहरने के लिये अनुरोध न करता। पिता, मुझे पूरी तौर से विश्वास है कि उन लोगों में से कोई भी अब जीता नहीं है। अगर पिताजी, उनकी लाशों पर कुछ ज़ुल्म हुआ तो वह जन्म भर आपके जी में काँटे की तरह खटका करेगा। किसी तरह वह हानि पूरी नहीं हो सकेगी। पिताजी, मैं पैरों पड़कर गिड़गिड़ाकर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उनका पता लगाकर जाइए।

ख़ाँजहाँ—बेगम ! बेगम ! अगर जीती हो तो ज़रा बोलो।—यह क्या अजमत, इस शिला के नीचे इतना पानी कैसा है ? यह क्या—नहीं नहीं—यह तो ख़ून है ! (हाथ से जाँच करते हैं) अजमत, यहाँ तो ख़ून की नदी भरी है !

अजमत—पिताजी, मा की लाश ढूँढ़िए।

ख़ाँजहाँ—बेगम—बेगम—रज़िया—रज़िया !

(अजमत और ख़ाँजहाँ का प्रस्थान
और दम भर में फिर प्रवेश)

ख़ाँजहाँ—सब गया ! बेगम, रज़िया, बाँदियाँ—सब

गई ! मैंने—देखने आया था मिलने तक का—आख़री मुलाक़ात करने तक का समय नहीं दिया ?

अजमत—पिता, अब क्या उपाय है ?

ख़ाँजहाँ—उपाय और क्या है ? ख़ुदादाद को चुपके से ख़बर दो। जहाँ तक जल्द हो सके, वह एक बड़ी भारी क़ब्र खोदे। हर एक को अलग अलग दफ़न करने के लिये समय नहीं है। एक ही जगह सबको सुला देना होगा !

अजमत—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

ख़ाँजहाँ—बेगम ! मालवे की रानी ! सुख और दुख में सदा मेरा साथ देनेवाली ! यही तुम्हारा अंजाम हुआ ? साधारण औरत की तरह, कुत्तों और सियारों से बचाने के ख़याल से, तुम्हें सिर्फ़ मिट्टी के नीचे दबा जाना पड़ेगा ! जी भरकर रोने भी न पाऊँगा ! आँसुओं के मोतियों की माला भी तुम्हारी क़ब्र पर चढ़ा न सकूँगा ! और बेटी रज़िया !—नहीं, जाने दो—औरतों की तरह रोने-धोने का यह समय नहीं है !—बेगम, मालवेश्वरी, तुमने आज जिस तरह लोदी-वंश की इज़्ज़त बचाई है उस तरह तुम्हारा यह अभागी स्वामी अगर कभी अपने घराने की इज़्ज़त बचा सका—अगर कभी फिर शान के साथ आगरे जा सका, तो तुम्हारी क़ब्र पर आकर तुमसे भेंट करेगा। नहीं तो बस यही आख़री मुलाक़ात है। मैं—दरिद्र अभागा ख़ाँजहाँ—तुम्हारा स्वामी—यह हार तुम्हें उपहार

और अपनी निशानी देता हूँ । (हार उतारकर बेगम के शरीर पर डालना) प्यारी बेगम, तुम्हारा आदर करने के लिये और कुछ भी यहाँ मेरे पास नहीं है । बेगम—बेगम—मेरी बेगम ! (दरियाख़ाँ और ख़ुदादाद का प्रवेश)

ख़ुदा०—जहाँपनाह !

ख़ाँजहाँ—आओ, जल्द आओ ! घोर अंधकार है ! सब लाशों को उठाकर एक साथ एक ही क़ब्र में रख दो।

दरिया०—जनाब, अब और देर करने से मान भी जायगा, जान भी जायगी, और सबसे प्यारी स्वाधीनता भी नहीं रहेगी ! महाबतख़ाँ और वज़ीर दोनों मिलकर हम लोगों पर हमला कर रहे हैं । पीछे की फ़ौज के साथ उनसे लड़ाई छिड़ गई है ।

ख़ाँजहाँ—अजमत को लेकर तुम लोग मालवे जाने की चेष्टा करो ।

अजमत—मैं कभी नहीं जाऊँगा । इस बारे में मैं जहाँपनाह का हुक्म नहीं मानूँगा। मैं जाकर करूँगा क्या ?

ख़ाँजहाँ—तुम नहीं समझते—उन दोनों बेईमानों (सेनापति और मंत्री) के बीच में वह शैतान (बादशाह) भी होगा। शायद इस अँधेरे में एक बार किसी तरह उनके पीछे जाकर उस पाजी की छाती में अपनी तरवार घुसेड़ सकूँ—

ख़ुदा०—जहाँपनाह, जो बात किसी तरह हो नहीं

सकती वह मत सोचिए। इस गुलाम की यही प्रार्थना है कि आप पार चले जायँ। जब तक हो सकेगा, हम लोग दुशमन का आगे बढ़ना रोकेंगे।

ख़ाँजहाँ—खुदादाद! मुझ बुड्ढे पर दया करो। सब की हत्या हो चुकी, अब पुत्र की हत्या का पाप भी मेरे सिर पर मत लादो।

अजमत—यह हो ही नहीं सकता। बदला—बदला! जब तक जान है तब तक यही एक बात ज़बान पर रहेगी—बस बदला! एक मालवेश्वर एक लाख के बराबर हैं। मालवेश्वर के बचने से सब बच सकता है। पिता, दोहाई है आपकी, मेरी माता की हत्या का—बहन की हत्या का—बेशुमार पठानियों की हत्या का बदला लीजिए।

दरिया०—जहाँपनाह—हुक्म दीजिए।

अजमत—इस समय मेरा हुक्म है। मैं इस युद्ध का सेनापति हूँ। भाइयो, सब लोग आगे बढ़ो, ईश्वर का नाम लेकर शैतानों की फ़ौज को रोको।

ख़ाँजहाँ—अच्छा वही करो। सब शोक पाए, फिर पुत्र का शोक ही क्यों बाक़ी रह जाय। जब तक पूरे तौर से भुगता न लेगा तब तक विधना को कल नहीं पड़ेगी! बंधुओ, भाइयो, तुम्हारे इस एहसान का बदला नहीं है। धन्यवाद देने के लिये शब्द नहीं हैं। अभागा नवाब आज ज़मीन छूकर तुम भाइयों को सलाम करता है।

सब लोग—जय नवाब की जय ! जय मालवेश्वर की जय !

दरिया०—ख़ुदादाद ! भाई ! सिर्फ़ एक आदमी जहाँ-पनाह के साथ जा सकता है। तुम जहाँपनाह के बहुत दिनों के साथी हो । तुम्हीं साथ जाओ। समझ रहा हूँ—समझ क्यों रहा हूँ, साफ़ देख रहा हूँ कि मौत सिर पर नाच रही है। भाई, शाहज़ादे को साथ लेकर सुख की मौत मरने के लिये मेरी बड़ी इच्छा है। भाई ख़ुदादाद, पुत्र-परिवार के शोक से व्याकुल हो रहे नवाब का साथ सिर्फ़ तुम ही अच्छी तरह दे सकते हो। मैं अपनी मा और बहनों को दफ़न करने का काम करता हूँ। तुम जहाँपनाह के साथ जाओ।

ख़ुदा०—यह कभी नहीं हो सकता । दरिया, तुम जहाँपनाह के साथ जाओ।

दरिया०—तो फिर तरवार खींच लो। जो बचेगा वह जायगा। उस्ताद ! आओ, एक दफ़ा तुम्हारी उस्तादी भी देख लूँ।

ख़ाँजहाँ—ना, इसकी ज़रूरत नहीं है। (ख़ुदादाद से) आओ मेरे लड़कपन के साथी, तुम्हीं आओ। होशियार अजमत ! जाते हो तो ख़ूब ख़बरदारी से जाओ । मैं जिसमें पार जा सकूँ और तब तक शत्रु नदी के किनारे तक न पहुँच सके वही करना। कम से कम उतनी देर

तक तो ज़रूर ही शत्रु को अटका रक्खो जब तक तुम्हारी मा, बहन और बाँदियाँ दफ़न की जायँ। होशियार! तुम्हारी मा, बहन और जिन बहादुर बाँदियों ने तुम्हारी इज़्ज़त के लिये जान दे दी है, उनके पवित्र मुख को शैतान न देख सके!

(ख़ुदादाद और ख़ाँजहाँ का प्रस्थान)

छठा दृश्य

स्थान—चंबल का किनारा

(नेपथ्य में लड़ाई का शोर-गुल होता है)

(पठान-सेना का प्रवेश)

१ सिपाही—मौत—सुख की मौत ! ऐसी मौत और किसने कब पाई है, सो हम नहीं जानते। लेकिन हम सब ऐसी ही सुख की मौत को गले से लगाने जा रहे हैं। होशियार भाई होशियार ! दुशमन क़तार की क़तार बेशुमार हैं । मुँह फेरने की भी फ़ुरसत नहीं मिलेगी। सिर्फ़ मारना और मरना है ।

(दरियाखाँ और अजमत का प्रवेश)

दरिया०—हाँ, सिर्फ़ मारना और मरना ही है। दुशमन बेशुमार क़तार की क़तार हैं ! मगर होशियार, जो कोई एक सौ दुशमनों के सिर काटे बिना मरेगा उसका मरना सफल न होगा—वह सिपाही इस दुनिया की हद के उस पार—स्वर्ग की राह में, हमारे जहाँपनाह के लख्ते-जिगर नवाबज़ादे के साथ न जा सकेगा। होशियार भाई होशियार ! अब इस पहाड़ी दर्रे को घेरकर खड़े हो जाओ !

अजमत—हाँ भाइयो, दुशमन के आने से पहले ही इस दर्रे को रोक लो। आओ भाइयो, आओ दरियाख़ाँ, युद्ध शुरू होने के पहले हम सब सदा के लिये एक दूसरे से मिल लें। फिर हम लोग परस्पर एक दूसरे की तरफ़ देखने का मौक़ा नहीं पावेंगे। अपने को देखने का भी मौक़ा नहीं मिलेगा। सिर्फ़ दुशमनों को देखेंगे—उन्हीं के सिरों पर हमारी नज़र रहेगी। ईश्वर ! हम लोगों की जान लेकर मालवेश्वर की जान और मान को बचाओ !

(सबों का गाना)

ठुमरी—माँझ झँझौटी

धुन—थिएटर

अब सब बढ़कर, एकदम चढ़कर, बस खींचो तरवार।
चलो दिलेरो, शेरो, हिम्मत देखे सब संसार;
मारो मारो, काटो काटो दुशमन को कर वार ॥हाँ अब०॥
आज मरेंगे या मारेंगे, यह प्रण कर लो यार;
चमचम चमकें युद्ध-भूमि में वीरों के हथियार ॥हाँ अब०॥
पैर न पीछे पड़े हमारा, चले न रुकता वार;
जय नवाब की, जय लोदी की बोलो जयजयकार ॥हाँ अब०॥

(सबका गाते गाते प्रस्थान)

(नारायणराव का प्रवेश)

नारा०—मैंने क्या किया, जिसकी तलाश में आया, वह मुझे छोड़कर दूर चला गया। मेरे स्वामी नवाब नदी

में फाँदकर बहे चले जा रहे हैं। बिना किसी साथी के, अंधकार में, बढ़ी हुई नदी की लहरों पर, असीम साहस के साथ, बदला लेने की आशा से जान बचाने के लिये बहते चले जा रहे हैं। मैं उनसे मिलने—उनके पैरों पर सिर रखकर अपने सब अपराध क्षमा कराने और उनकी सहायता करने आया था। पर यहाँ आकर अपाहिज सा हो गया हूँ—आगे नहीं बढ़ सकता। मेरे सामने तीस हज़ार सिपाहियों की कठिन दीवार है। वे नवाब के तीन सौ वफ़ादार बहादुर सिपाहियों को टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे। ईश्वर, इस दीवार को तोड़कर उधर जाना मेरी शक्ति से बाहर है। नवाब से मेरी मुलाक़ात होना असंभव है। दादाजी से आशीर्वाद लेकर यहाँ दौड़ा आया। वह आशीर्वाद क्या निष्फल ही जायगा ? (नेपथ्य में युद्ध का कोलाहल सुन पड़ता है) वह युद्ध शुरू हो गया। विशाल अजगर ने लीलने के लिये सिंह के बच्चे की तरफ़ मुँह बढ़ाया है। अपने पैने नखों की चोट से वह सिंह का बच्चा अजगर को घायल कर देगा; पर तो भी अजगर उसे लील लेगा। ईश्वर ! क्या जी की जी में ही रह जायगी ? आगे नहीं जा सकूँगा ?

(दादाजी का प्रवेश)

दादाजी—मनुष्य ही तो जान पड़ता है। यह क्या असल मनुष्य है, या मेरे ही जैसा वनमानुष है ? वहाँ लड़ाई हो रही है, यहाँ दादूमियाँ हाथ-पैर पटक रहे हैं

यह कैसी बला है ! वह मार रहा है, यह मर रहा है । भाई दादूमियाँ, तुम्हारा इसमें क्या, जो तुम चिंता में चूर हो रहे हो ! इस दुनिया में कौन मारता है ? कौन मरता है ? जो मारता है वही मरता है या जो मरता है वह मारता है ?

नारा०—वाह वाह ! दादाजी महाराज यहीं आ गए ! तुम भी दादाजी, इस कठिन समस्या के फेर में उलझे हुए हो ?

दादा०—तुम कौन हो भाई ? तुम यहाँ कहाँ से आए भाई ? क्यों आए भाई ?

नारा०—कैसे अभाग्य हैं ! अंधकार में दादाजी मुझे नहीं पहचान पाते !

दादा०—चुप क्यों हो भाई ? पास ही लड़ाई हो रही है—यही देखकर क्या डर गए हो ?

नारा०—नहीं, डरा नहीं हूँ । लेकिन विपत्ति में पड़ा हुआ हूँ । दूर पर मेरा आत्मीय मेरी राह देख रहा है । राह में एकाएक युद्ध छिड़ गया है । मैं इन सिपाहियों की दीवार तोड़कर उसके पास पहुँच नहीं सकता ।

दादा०—तुम्हारा आत्मीय—राह देख रहा है—कितनी दूर पर ?

नारा०—बहुत ही निकट है—हाथ फैलाते ही पाया जा सकता है । बीच में आदमियों की दृढ़ दीवार है—मैं उसके पास नहीं पहुँच सकता ।

दादा०—आज अब किस तरह पहुँच सकोगे भाई ?

नारा०—आज अगर नहीं पहुँच सका तो फिर उसे नहीं पा सकूँगा।

दादा०—उसे पाना ही होगा ?

नारा०—बेशक, पाना ही होगा।

दादा०—अच्छी बात है, तो मेरा हाथ पकड़ो।

नारा०—उसके बाद ?

दादा०—आओ, दीवार फाँद कर चलें।

नारा०—तुम भी चलोगे ?

दादा० (आशा से) वह हाथ-भर के फ़ासले पर बैठा है ? आज न मिलने से फिर कभी मुलाक़ात न होगी ? इतने बड़े दारुण विरह की आग न पहुँचने से ठंडी हो जायगी ? तो फिर चलो भाई, तुमको हाथ पकड़कर उसके पास ले चलूँ।

नारा०—वहाँ तक जायँगे कैसे ? जाने की राह तो बादशाह की सेना ने रोक रक्खी है।

दादा०—अरे पागल आदमी, तेरा विरह मोम का जान पड़ता है, जो ज़रा सी आँच में पिघल जाता है। जाने का इरादा है तो चल। मैं भी चलूँगा। किस तरह जाना होगा, सो किस तरह बता सकता हूँ ?

नारा०—अच्छा हाथ पकड़ो।

दादा०—(हाथ पकड़कर हँसता है) अरे कौन ! ब्राह्मण

देवता, नारायणराव, तुम हो ?

नारा०—(घुटने टेककर) दादाजी महाराज, क्षमा कीजिए। उस दिन उस छली बालक के धोखे में आकर मैंने आपका अपमान किया था—मुझसे बड़ी भूल हुई—क्षमा कीजिए।

दादा०—(नारायणराव को उठाकर) सो तुमने कुछ बुरा नहीं किया। फिर और भी अपमान करो। अपमान करते करते बताओ, तुम्हारा वह आत्मीय कहाँ है, जिससे तुम मिलना चाहते हो।

नारा०—वह आत्मीय बहादुर नवाब ख़ाँजहाँ लोदी—मेरे पिता के स्वामी—हैं। केवल एक साथी को लिए, एक बार मुझे दर्शन देकर, बिजली की तरह तेज़ी से इधर ही चले गए हैं। मैं खड़ा देखा किया—उनके साथ नहीं जा सका।

दादा०—साथ जाना चाहते हो ?

नारा०—मेरा जी उनकी सेवा और सहायता करने के लिये व्याकुल हो रहा है। लेकिन किस तरह उनके पास पहुँचूँ दादाजी महाराज—किस तरह इस भयानक चंबल नदी के पार जाऊँ ?

दादा०—यह दास तुम्हारे सामने है। ब्राह्मण देवता, एक बार अपने मुख से आज्ञा दे दो।

नारा०—आप किस तरह पार जायँगे दादाजी ?

दादा०—मेरे भी नाव है। आज्ञा दो, अभी उस नाव पर चढ़कर पार हो जाऊँ।

नारा०—तो फिर मुझे भी अपने साथ ले चलिए।

दादा०—ना भाई, यह मुझसे न हो सकेगा—पहाड़ लादकर अपनी नाव भारी नहीं कर सकूँगा—उस नाव पर बैठकर केवल मैं ही पार जा सकूँगा। बोलो देवता, जल्द बोलो। देर होने से पार जाने से भी कुछ लाभ न होगा—लोदी को ढूँढ़ न पाऊँगा। बोलो बोलो।

नारा०—मैं आपकी बात समझ नहीं पाता महाराज!

दादा०—लो, समझाए देता हूँ। समझाए क्यों, दिखाए देता हूँ। पहले तो यह तरवार लो। बादशाह भी एक देवता है—उसकी दी हुई चीज़ अनादर करके फेंक न देनी चाहिए। लो, इस तरवार को कमर से लगा लो। फिर देखो, मैं किस तरह इस बढ़ी हुई नदी के उस पार जाता हूँ। देवता, ये ही ब्राह्मण के चरण मेरी नाव हैं। (पैर छूता है)

नारा०—आप यह क्या करते हैं—क्या करते हैं?

दादा०—यही नाव है। लोग तो इससे भवसागर तर जाते हैं—यह छोटी सी नदी क्या है! देखो।

(प्रस्थान)

नारा०—फाँद पड़े! इतना विश्वास! वही तो! चंबल ने जैसे सिर पर उठाकर रख लिया! तो फिर मैं

ही खड़ा हुआ क्या देख रहा हूँ ? तुम ब्राह्मण-भक्ति का सहारा लेकर नदी में फाँद पड़े तो मैं भी भक्त का नाम लेकर क्यों न फाँद पड़ूँ ? दादाजी महाराज, इस दुर्बल ब्राह्मण बालक को भी अपने साथ ले लो—बल दो, जिसमें तुम्हारी ही तरह मैं भी अनायास उस पार पहुँच जाऊँ।

(प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य

स्थान—चंबल के किनारे का मैदान

दरियाख़ाँ और अजमतख़ाँ

दरिया०—धीरे धीरे मेरे जीवन का अंत निकट आता जाता है। नवाबज़ादा, अब तो शायद मैं आपको चंबल के किनारे तक नहीं ले जा सकूँगा।

अजमत—इतनी दूर तक आकर अब चंबल के पास पहुँचकर मुझे हताश मत करो। दोहाई है दरियाख़ाँ! यहाँ मत मरो। चंबल की धारा में मुझको डाल दो। फिर हम दोनों हाथ पकड़कर मौत की राह का सफ़र करें।

दरिया०—आपके यों कहने की क्या ज़रूरत है नवाब ज़ादा! बहुत देर हुई, जब मैं मर चुका हूँ। सिर्फ़ इस ख़याल से कि तुमको दुशमनों के हाथ में नहीं पड़ने दूँगा, यहाँ तक अपना टूटा ढाँचा लिए चला आया हूँ। लेकिन अब नहीं चल सकता। सैकड़ों घाव लगे हैं; दम लबों पर है। अब इस टूटे पिंजड़े में प्राण-पखेरू नहीं रह सकता—वह उड़ना चाहता है। मैं लाचार हूं। ख़ुदावंद, इस गुलाम को माफ़ करना।

अजमत—मेरी साँस बंद होने के लिये चंबल का किनारा

राह देख रहा है । यहाँ मेरा दम नहीं निकल सकता । यह दुशमन की ज़मीन है—यहाँ पर मैं मर नहीं सकूँगा। इच्छा थी कि मालवे की पवित्र मिट्टी से अपना यह शरीर ढकूँगा । लेकिन वह नहीं हो सका । तो फिर जिस घाट में मेरे पिता मालवेश्वर फाँदकर उस पार गए हैं—जहाँ उनके पवित्र चरण पड़े हैं—वहीं मुझे ले चलो । मैं अपना शरीर डालकर उस घाट का पहरा दूँगा । दोहाई है दरियाख़ाँ ! यहाँ मत मरना—और ज़रा सी दूर चलो ।

दरिया०—(हाथ जोड़कर) मेरे मालिक ! मेरे सर्वस्व ! तुम अब दीन वचन मत कहो ! मुझसे नहीं सुने जाते ! छाती फटी जाती है ! मैं लाचार हूँ ।

(नेपथ्य में कोलाहल सुन पड़ता है)

अजमत—वह शत्रु आ गए—वह मुझे पकड़ने आ गए—दरिया ! दरिया !

दरिया०—अफ़सोस ! ख़ुदा ! मैं क्या करूँ ! नवाबज़ादा, उसी ख़ुदा के आगे रोओ; और कौन मददगार है यहाँ ?

अजमत—क्या करूँ ? यहाँ तुम्हारे सिवा और कौन है ?

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

नेपथ्य में—कहाँ गया—किधर गया—वह है—वह है ! गिर पड़ा है—पकड़ो ! पकड़ो !

अजमत—वे पकड़ने आ रहे हैं—तुम्हारे रहते मैं पकड़ लिया गया ! दरिया—दरिया !

दरिया०—(तरवार उठाकर) इस दुनिया में कौन ख़ुदा का बंदा यहाँ है—दरिया की तरवार और उसके दिल की ख़्वाहिश लेकर उसके स्वामी के लड़के की रक्षा आकर करो।

नेपथ्य में—पकड़ो पकड़ो।

दरिया०—यह पुण्य लूटने के लिये क्या कोई नहीं है?

(वेग से सोफ़िया का प्रवेश)

सोफ़िया—है क्यों नहीं—मैं हूँ।

दरिया०—धन्य ईश्वर! आओ आओ। आओ मेहरबान भाई। तरवार, तरवार—यह तरवार लो।

सोफ़िया—लाओ वफ़ादार बहादुर, जल्द लाओ।

दरिया०—हाय ईश्वर! यह क्या हुआ! बालक की रक्षा करने के लिये उससे भी छोटा बालक आया है!

सोफ़िया—मैं बालक हूँ सही, मगर इससे क्या? यहाँ मेरे सिवा कोई दूसरा रक्षा करनेवाला नहीं है। शत्रु चारों ओर पता लगा रहे हैं। तरवार—तरवार लाओ।

दरिया०—मौत! तेरी यह कैसी दिल्लगी है!

सोफ़िया—भाई, यह दिल्लगी नहीं, ईश्वर की कृपा है। तरवार—तरवार—जल्द तरवार दो। संदेह मत करो। बालक देखकर डरो मत। लाओ तरवार। तरवार के साथ ही अपने हृदय की वीरता और बल दो। अपनी अटल प्रभु-भक्ति की शक्ति दो। दुनिया भर के दुश्मन

मुझे देखकर भाग जायँगे।

दरिया०—अच्छा यह लो।

(तरवार देकर दरिया की मृत्यु)

सोफ़िया—उठो नवाबज़ादा, उठो।

अजमत—दरियाख़ाँ!

सोफ़िया—अब दरियाख़ाँ को क्यों पुकारते हो भाई! दरियाख़ाँ की आत्मा तो अब इस शरीर में समा गई है। अब क्या आज्ञा देते हो, मुझे आज्ञा दो।

अजमत—आप कौन हैं?

सोफ़िया—आपका नौकर—

अजमत—नौकर मत कहो, रक्षा करनेवाला कहो।

सोफ़िया—क्यों न कहूँ नवाबज़ादा?

अजमत—मेरे अब नौकर कहाँ हैं?

सोफ़िया—तुम अपने पिता के भक्त और सच्चे सपूत हो! तुम्हारे नौकरों की कमी हो सकती है? दुनिया के जड़-जीव तक तुम्हारी आज्ञा का पालन और तुम्हारी सेवा-सहायता करने को तैयार हो जायँगे! तुम धन्य हो! लेकिन मैं अपने को सबसे बढ़कर भाग्यशाली समझता हूँ, जो ऐसे समय पर तुम्हारी सहायता करके अपने को कृतार्थ कर सका! आज्ञा दो, कहाँ ले चलूँ।

अजमत—ऐसा मधुर स्वर लेकर तुम कहाँ से आ गए बटोही?

सोफ़िया—सो सब बताने के लिये समय नहीं है। पहाड़ के सब स्थानों में दुशमन तुम्हें खोज रहे हैं। जल्द उठो नवाबज़ादा !

अजमत—क़ब्र से उठकर मुझे धीरज देने और सहायता करने क्या बहन रज़िया तो नहीं आ गई है ?

सोफ़िया—अच्छी बात है भाई ! यही कहने से अगर तुमको शांति मिले, तो तुम मुझे रज़िया ही कहो। मैं रज़िया हूँ। कहो, मुझको रज़िया कहो। आज्ञा दो, मैं तुमको कहाँ ले चलूँ; देर मत करो।

अजमत—अच्छा तो मुझे उठाओ।

सोफ़िया—कहाँ चलोगे, बताओ।

अजमत—और कहाँ ले चलोगे, मेरी मौत में अब देर नहीं है—मुझे चंबल के किनारे ले चलो।

सोफ़िया—चलो। (प्रस्थान)

पर्दा गिरता है

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—युद्ध-भूमि

महाबतख़ाँ और सिपाही

महाबत—युद्ध बंद मत करो, आगे बढ़ो। सिर्फ़ ख़ाँजहाँ बाक़ी है; उसे भी पकड़कर क़ैद कर लो।

१ सिपा०—ख़ाँजहाँ चला गया। नदी पार होकर चला गया। यह उसका बेटा था।

महा०—चला गया! इतनी सेना उसका जाना नहीं रोक सकी!

१ सिपाही—नहीं जनाबआली! उसके बेटे अजमतख़ाँ ने अपनी जान देकर उसकी इज़्ज़त बचा ली।

२ सिपा०—नहीं हुज़ूर, अजमतख़ाँ अभी ज़िंदा है। वह जा रहा है—वह देखिए, अँधेरे में छिप गया।

महा०—देखते क्या हो, दौड़ो, उसे पकड़ लो।

२ सिपा०—और एक बालक न-जानें कहाँ से आकर उसे लिए जा रहा है।

महा०—और एक बालक? तुमने अच्छी तरह देखा है?

२ सिपा०—वह फिर दिखाई पड़ रहा है। वह चढ़ रहा है—वह उतर रहा है—वह फिर ग़ायब हो गया।

महा०—बालक! बालक! हो बालक, दुशमन का एक आदमी भी मत छोड़ो। दौड़कर जाओ, जाने मत दो, पकड़ लो।

सब सिपा०—चलो, चलो। (सबका प्रस्थान)

(कुछ सिपाहियों के साथ शाहजहाँ और आजफ़ का प्रवेश)

आजफ़—देखो भाई सब लोगो, दुशमन समझकर किसी का अपमान मत करना। जो मर चुका है उसे क़ब्र खोदकर दफ़न करो; और जो मरा नहीं, उसे ले जाकर हमदर्दी के साथ उसकी सेवा करो।

शाह०—यह तो ठीक बात है।

आजफ़—बादशाह सलामत, ग़ुलाम की एक प्रार्थना है।

शाह०—क्या? कहो।

आजफ़—प्रार्थना भी नहीं, बल्कि भीख है।

शाह०—क्या, बोलो।

आजफ़—अजमत लोदी जहाँ पर मरा है वहाँ पर एक मसजिद बनवा दी जाय।

शाह०—इसके लिये इतने गिड़गिड़ाने की क्या ज़रूरत है वज़ीर साहब? शाहजहाँ ही क्या बहादुर की इज़्ज़त करना नहीं जानता? आगरे का तख़्त ही क्या उसकी नज़र में सब कुछ है? महानुभव शाहंशाह अकबर भारत

के हिंदू और मुसलमानों के हृदय में जो अपना आसन जमा गए हैं, उस आसन के एक किनारे पर थोड़ी सी जगह पाने की उत्तम अभिलाषा क्या उनके पोते के हृदय में नहीं है ?

आजक़—अगर दिल्ली के शाहंशाह अकबर के पोते शाहजहाँ की उदारता पर संदेह होता तो मैं कभी उनके सामने अजमत लोदी का नाम लेने की भी हिम्मत न कर सकता।

शाह०—श्रेष्ठ वीर अजमत ने पिता की रक्षा के लिये जो यह अद्भुत काम किया है वह जब आगे के इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखा जायगा और हरएक आदमी भक्ति के साथ उसके पवित्र नाम को लेगा तब यह चंदरोज़ जीनेवाला शाहजहाँ कहाँ होगा ? अजमत के मरने की यह जगह मुसलमानों के लिये "हल्दी-घाटी"—चित्तौर के राजा राना प्रतापसिंह की लीला-भूमि के समान पवित्र है। बादशाह शाहजहाँ वहाँ पर आदर के साथ अपना सिर झुकाता है। वज़ीर, तुम मुझसे क्यों प्रार्थना कर रहे हो ? अजमत के ख़ून से जो स्थान पवित्र हुआ है वहाँ पर तुम अपनी इच्छा के अनुसार ईश्वर की उपासना का स्थान बनवा दो। (सबका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—फूलों की मालाओं से ढकी हुई समाधि

सोफ़िया

ठुमरी—ताल रूपक

रागनी देस

यह जगत सब दुख-भरा,
जी भर यहीं पर है अमन ॥ हाँ यह० ॥
धन्य हो तुम वीर भाई,
धन्य है यह मरन ।
मान पर क़ुरबान होकर
गए प्रभु की सरन ॥ हाँ यह० ॥
धन्य हो तुम वीर जननी
मेट जी की जरन—
सिर किया ऊँचा स्त्रियों का
शत्रु-सिर धर चरन ॥ हाँ यह० ॥
दुशमनी के राज से अब
स्वर्ग को कर गमन,
सुख से सोओ, चैन पाओ
तुम यहाँ पर बहन ॥ हाँ यह० ॥

सोफ़िया—बहा दिया—सोने का कमल पानी में बहा दिया ! सोने के कमल ! दैव ने असमय में ही तुम्हें तोड़-कर गिरा दिया ! शत्रुता की गर्म बहिया तुमको सुखाने के लिये—तोड़ डालने के लिये—आ रही है। जाओ कमल, बह जाओ,यह नदी तुमको पवित्र देश में पहुँचा देगी। प्रेम की धारा तुमको आगे से जानेवाली माता के पास पहुँचाने के लिये खींचे लिए जा रही है। जाओ कमल, बह जाओ। घड़ी भर के लिये मिलकर इस अयोग्य बहन से सदा का गहरा नाता जोड़कर तुम चल दिए ! लोदी-वंश के उज्ज्वल यश-अवतार, तुम पवित्र स्वर्ग-लोक को सिधार गए ! तड़के की जगी हुई चिड़ियों की पवित्र मनोहर वाणी से जगकर, सबेरे की लाली से नहाकर, नवीन प्रभात में स्वर्ग की नदी के किनारे रहकर सदा विश्राम करो—शांति पाओ। बेईमान शैतान वहाँ तुम्हारा पीछा नहीं कर सकेगा। उन शत्रुओं की आवाज़ वहाँ तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँच सकती—जाओ भाई, जाओ। नदी में बहकर अपनी मा की गोद में पहुँच जाओ। मैं असहाय और असमर्थ हूँ। मैंने जंगली फूल चुनकर उनसे तुम्हारी—और अपनी—मा की समाधि को सजाया है। तुम्हारी यशस्विनी मा मेरी इस तुच्छ सेवा को—तुच्छ उपहार को—ग्रहण करें !—अच्छी तरह सोनेवाली मा, जागो। तुम्हारे बेटे के गौरव-

गीत से तुम्हारे कानों को शीतल करने के लिये यह नदी जैसे व्याकुल हो रही है—और बार बार तुम्हारे पैरों को छूकर जैसे तुमको जगा रही है । शांतिमयी मा, धरती की गोद में आराम करते करते ज़रा जगकर उस गौरव-गीत को सुन लो—जिसमें तुम्हारी अतृप्त आत्मा को शांति मिले ।

(कुछ सिपाहियों के साथ महावतख़ाँ का प्रवेश)

महा०—और कोई बाक़ी नहीं है । जान पड़ता है, अजमतख़ाँ मरने से पहले ही चंबल में फाँद पड़ा ।

१ सिपाही—लेकिन जनाब वह बालक ?—वह भी क्या अजमतख़ाँ के साथ चंबल में फाँद पड़ा ?

महा०—कौन बालक—क्या ! बालक ? तुम लोग क्या कह रहे हो—कुछ समझ में नहीं आता । इस भयानक लड़ाई के मैदान में बालक कहाँ से आया ?

१ सिपा०—जनाब, मैं झूठ नहीं कहता—भ्रम भी नहीं हुआ—मैंने अच्छी तरह अपनी आँखों से देखा है।

महा०—हो सकता है—पर मेरी समझ में कुछ नहीं आता । लेकिन यह क्या है—यहाँ पर ख़ून कैसा है !

१ सिपा०—वही तो जनाब, यहाँ ख़ून कैसा है !

महा०—यह पत्थर की शिला ख़ून से तर है—सब तरफ़ ख़ून के फुहारे से छूटे हैं—दरख़्तों और लताओं की पत्तियाँ ख़ून से छीपी पड़ी हैं । नदी-किनारे के इस

कुंज में --पहाड़ की सुनसान जगह में—यह खून की नदी किसने बहा दी !

सोफ़िया—किसने बहा दी ?

१ सिपाही—(चौंककर) वह है, जनाब वह है ।

महाबत—बालक, तुम कौन हो ?

सोफ़िया—आपके पहले के मित्र ख़ाँजहाँ लोदी आगरे में आए थे । मित्रता के भूखे लोदी ने आपके यहाँ आकर मेहमानदारी क़बूल की थी । उसके घर में खून की नदी किसने बहा दी सेनापति ?

महा०—(आश्चर्य से) ऐं ऐं—कौन—कौन—सो—सो—

सोफ़िया—होशियार ! लोदी-वंश की पवित्र कुल-कामिनी—बहादुर ख़ाँजहाँ लोदी की बेगम—इस क़ब्र के भीतर अपने बहादुर स्वामी के मान के तकिए पर सिर रक्खे सुख से विश्राम कर रही हैं । ख़बरदार, अगर तुम लोगों को अपनी इज़्ज़त का और औरतों की इज़्ज़त का ज़रा भी ख़याल हो तो आगे क़दम न बढ़ाना ।

(आजफ़ का प्रवेश)

आजफ़--सेनापति, बादशाह की आज्ञा है कि चंबल का जल घटना शुरू हो गया है—इसलिये अब यहाँ देर करने की ज़रूरत नहीं है ।

महा०—वह देखिए, चंबल का सारा जल पत्थर की

तरह खड़ा होकर मेरी राह रोके हुए है।

आजफ़—वही तो! यह क्या है! यह क्या तुमने दिखाया महाबतख़ाँ!

महा०—आप नहीं समझे हुज़ूरआली?

आजफ़—समझ गया। बहादुर ख़ाँजहाँ जहाँपनाह की छाती पर सदा के लिये जय-स्तंभ खड़ा करके चले गए हैं।—क़ब्र के पास वह बालक कौन खड़ा है?

सोफ़िया—(तरवार की नोक अपनी छाती में लगाकर) मन्सबदार!

आजफ़—कुछ ज़रूरत नहीं है—मैं भाई तुम्हारे बारे में कुछ दरयाफ़्त करना नहीं चाहता!

महा०—तो अब क्या आप फिर मुझे लोदी का पीछा करने की आज्ञा देते हैं?

आजफ़—नहीं जनाब, अब और ज़ुल्म मुझसे नहीं हो सकता। मैंने बादशाह की नौकरी की है, मगर ईमान नहीं बेचा! ख़ाँजहाँ आपके बड़े भारी दोस्त हैं—मैं अब पीछा करने के लिये नहीं कह सकता। जाइए—आगरे को लौट जाइए। इस टूटे हुए घर को चूर चूर करने के लिये अब कोई ज़रूरत नहीं है। वीर ख़ाँजहाँ! युद्ध के पहले दरबार के बीच मैं तुमसे हार गया था। मैं उस हार को स्वीकार कर तुम्हारे आगे सिर झुकाता हूँ!

(महाबतख़ाँ और सोफ़िया के सिवा सबका प्रस्थान)

महा०—आओ बेटी, चलो।

सोफ़िया—कहाँ पिता?

महा०—और कहाँ, घर चलो।

सोफ़िया—मुग़ल की राजधानी में! पिता, आप भी लोदी के साथ शत्रुता कर चुके हैं। आइए, बाप और बेटी, दोनों ख़ाँजहाँ की ग़ुलामी करके उस पाप का प्रायश्चित्त करें।

महा०—बेटी, इस समय मुझमें कुछ भी करने की शक्ति नहीं है।

सोफ़ि०—यह बात आप न कहिए। यह बात आप के मुँह से अच्छी नहीं लगती। पिता, मैंने सुना है, आप परम पराक्रमी पूजनीय सूर्य-वंश में उत्पन्न हुए हैं। मैं आपकी कन्या होकर कर सकती हूँ; और आप नहीं कर सकेंगे।

महा०—तुम कर सकोगी बेटी—मुझसे नहीं हो सकेगा।

सोफ़ि०—हाँ, मैं कर सकूँगी।

महा०—तुमको देखकर मुझे अचरज हो रहा है—पहले की बातें याद पड़ रही हैं—मैं महा अधम हूँ!

सोफ़ि०—आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं आपको इस महा पाप के कलंक से छुड़ाने की कोशिश करूँ।

महा०—तो सुनो बेटी पछतावे की आग से मेरा हृदय जला जा रहा है। अगर तुम इस सूर्य-वंश के

कलंक की कालिमा छुड़ाने में समर्थ हो तो सूर्यदेव की ओर देखकर उच्च स्वर से कहूँगा कि तुम इस अपने धर्म को छोड़नेवाले नराधम का उद्धार करने के लिये सावित्री का अवतार हो।

सोफ़िया—पिता, प्रतापी पिता ! हिंदू लोग किस तरह बड़ों की बंदगी करते हैं सो मैं नहीं जानती—मैं आपको सलाम करती हूँ। मुझे माफ़ करना।—बेगम ! इस लौंडी की गुलामी को क़बूल करो।

(महाबतख़ाँ का प्रस्थान)

(सोफ़िया खड़ी रहती है और पर्दा गिरता है)

तीसरा दृश्य

स्थान—नगर का एक छोर

नगरनिवासी

१ नगरनिवासी—वही तो, यह क्या हुआ भाई! हमारे नवाब साहब बेगम-बेटी वग़ैरा को साथ लेकर आगरे के दरबार को गए; इधर बादशाह की पल्टन ने आकर नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। किसी ने नहीं रोका—किसी ने चूँ तक नहीं की। क़िले से तोप की एक आवाज़ तक नहीं हुई।

२ नगर०—मैं भी तो वही देख रहा हूँ; लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आता। क़िलेदार ने चुपचाप क़िले का फाटक खोल दिया। चुपके से अँधेरे में मुग़लों की फ़ौज क़िले के भीतर घुस गई। देखते ही देखते प्रतापी ख़ाँजहाँ लोदी का मालवा मुग़लों के हाथ में चला गया।

(तीसरे नागरिक का प्रवेश)

३ नगर०—देखो, क़िलेदार ने चुपचाप मुग़लों को क़िला नहीं सौंप दिया। सात दिन तक उसने मुग़लों को शहर के भीतर घुसने नहीं दिया—सात दिन तक वह अपने मालिक के आने की राह देखता रहा। सात दिन

तक जब नवाब नहीं आए, यहाँ तक कि आगरे से एक आदमी ने भी लौट आकर नवाब की ख़बर नहीं दी, तब अपने मालिक के मालिक बादशाह से शत्रुता करना ठीक न समझकर क़िलेदार ने क़िले का फाटक खोल दिया !

१ नगर०—नवाब का क्या हुआ ?

३ नगर०—नवाब की ख़बर अभी तक कुछ नहीं मिली। हमारे नवाब कहाँ हैं—इसका पता अभी तक कुछ नहीं चला। कोई कहता है—वह आगरे में क़ैद कर लिए गए हैं। कोई कहता है—वह लौटे आ रहे थे, सो चंबल की बाढ़ में सपरिवार बह गए।

२ नगर०—पहली बात का होना ही बहुत संभव है। चंबल की बाढ़ में बह जाना संभव नहीं। अगर बाढ़ में बह गए हैं तो जो चुने हुए तीन सौ जवान पठान उनके साथ गए थे, वे भी क्या बह गए ! यह अनर्थ की बात कहने के लिये क्या एक आदमी भी मालवे लौटकर नहीं आ सकता था ?

१ नगर०—ठीक कहते हो, बाढ़ में बह जाना संभव नहीं है। तो फिर नवाब क़ैद हैं ! लेकिन किस अपराध के कारण नवाब क़ैद हैं ? (नारायणराव का प्रवेश)

नारा०—क्या—क़ैद ! कौन कंबख़्त कहता है कि क़ैद हैं। नवाब को क़ैद करने की ताक़त इस दुनिया में कौन रखता है ?

१ नगर०—आप कौन हैं ?

नारा०—यह बात मेरी लाश से पूछना । इस समय मैं जो कहूँ वह कर सकोगे ?

१ नगर०—क्या करना होगा ? बताइए ।

नारा०—नवाब का पता लगाना होगा ।

सब—हमारे नवाब कहाँ हैं ?

नारा०—सो तो अभी मैं नहीं जानता । पता लगाना होगा कि नवाब कहाँ हैं । नवाब आगरे में बादशाह के बुलाने से गए थे । वहाँ निठुर नीच बादशाह ने उनका अपमान करना चाहा । लेकिन वह सिंह के समान पराक्रम से सब दरबारियों को नीचा दिखाकर आगरे से चल दिए । लेकिन क्या कहूँ भाई, भाग्य ने उनको देश लौटने नहीं दिया । उनकी बेगम, उनकी बेटी और उनकी बाँदियों ने अपनी जान दे दी । पुत्र लड़ते लड़ते मर गया । तीन सौ चुने हुए जवानों में से कुछ दुशमन से लड़कर कट मरे और कुछ चंबल की धारा में बह गए ।

सब—हे भगवान्, यह कैसी बुरी ख़बर तुमने सुनाई!

नारा०—नवाब का पता लगाओगे या यहीं खड़े होकर "नवाब कहाँ हैं, नवाब कहाँ हैं" कहकर चिल्लाओगे ?

१ नगर०—आप कौन हैं ?

नारा०—इस तरह के प्रश्न करके बेकार समय न

गँवाओ। मैं कौन हूँ—यह जानकर तुम क्या करोगे? मैं जो हूँ सो हूँ। तुम लोग यह जानने के लिये व्याकुल हो रहे थे कि नवाब कहाँ हैं। इसीसे मैंने तुमको ख़बर दे दी। अगर दुनिया में औरतों की तरह रोने-धोने आए हो तो यहीं खड़े खड़े चिल्लाओ। और, अगर मर्दानगी का दावा है तो नवाब का पता लगाओ।

२ नगर०—नवाब जीते हैं?

नारा०—जीते हैं या नहीं, सो भगवान् जाने। नवाब चंबल की धारा में फाँद पड़े थे। जीते हैं या नहीं, सो ईश्वर जाने। मैं उन्हें खोजने जा रहा हूँ।

१ नगर०—(दूसरे नागरिकों से) क्यों जी, इनके साथ नवाब का पता लगाने जा सकोगे?

नारा०—अगर हिम्मत हो तो मेरे साथ आओ। नहीं तो राह में खड़े होकर "क्या हुआ, क्या हुआ" कहकर रोओ मत! कायर मित्र के रोने की अपेक्षा शत्रु का ललकारना अच्छा! नवाब का पता लगाने चल सकोगे?

२ नगर०—चल सकेंगे।

सब—ज़रूर चल सकेंगे।

नारा०—केवल "चल सकेंगे" कहने से ही काम नहीं चलेगा। यह कहने के साथ ही सच्चे जी से प्रतिज्ञा करो कि पता लगाए बिना इस ज़िंदगी में घर नहीं लौटेंगे।

१ नगर०—लेकिन आप—आप - दीवान साहब के बेटे हैं ?

नारा०—दीवान ? किसके दीवान ? पहले हमारे राजा को खोजकर गद्दी पर बिठाओ। अगर यह कर सको तो मुझे दीवान का बेटा कहकर पुकारो। नहीं तो दीवान का बेटा कहकर दिल्लगी मत करो। मैं इस समय स्थानभ्रष्ट दुखी नवाब का एक अति दीन दास हूँ—दीवान का बेटा नहीं हूँ।

२ नगर०—क्यों भाई, प्रतिज्ञा कर सकोगे ?

नारा०—जो यहीं से सब छोड़कर चल सके वह प्रतिज्ञा करे। जिसे परिवार से मिलने की साध है—स्त्री, बेटी, बेटे वग़ैरा का मुँह देखने की लालसा है, वह चला जाय। मैं अब और देर नहीं कर सकता।

१ नगर०—निहत्थे चलें ? हथियार न लें ?

२ नगर०—ख़ाली हाथ कहाँ चलोगे ? तुम बड़े मूर्ख हो ! देवता की बात सुनकर भी नहीं समझते।

नारा०—स्त्री या बालक का पता लगाने के लिये नहीं—वीर का पता लगाने के लिये चलना होगा।

२ नगर०—ख़ाली हाथ कहाँ जाओगे भाई ?

१ नगर०—क्यों जी हो सकेगा ?

सब—हो सकेगा।

नारा०—तो सुनो—मैं छोटी चींटी के बराबर ताक़त

रखता हूँ—साधारण आदमी हूँ, सामने बड़ी भारी अटल पहाड़ की ताक़त है। तब भी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने राजा के अपमान और हानि का बदला लेने के लिये उसी पहाड़ की छाती में डंक मारूँगा।

२ नगर०—समझ गए स्वामी वह कौन है—वह पहाड़ हो तो क्या है—हम चींटियाँ काटकर अचल को भी चलायमान कर देंगी। अपने विष से उसे शिथिल कर देंगे।

सब—चूर चूर कर देंगे—मिट्टी में मिला देंगे।

नारा०—तो फिर हथियार लेकर तैयार होकर अभी आओ—और, और जो कोई आना चाहे उसे भी साथ ले आओ। सुनो, तुम लोग ही मेरी शक्ति हो। अगर जीता रहूँगा तो जन्म भर तुम लोगों की ताबेदारी करूँगा। और, अगर मर गया तो तुम लोगों के पवित्र शरीरों के तकिए पर सिर रखकर सदा के लिये सो जाऊँगा।

१ नगर०—स्वामी, हम लोग इस घड़ी से आपको अपना शरीर अर्पण करते हैं। हमारी यह सेवा स्वीकार कीजिए।

नारा०—ख़ैर, मेरा पहला काम तो सफल हुआ। राह चलते ही सेना तैयार हो गई। चींटी—सचमुच बादशाह शाहजहाँ के मुक़ाबले में मैं चींटी हूँ।—लेकिन हे भगवन्, इस क्षुद्र चींटी पर तुम्हारी अथाह कृपा है,

इस बात का मुझे पूरा अनुभव हो गया। जोश के मारे उस प्रचंड नदी के प्रवाह में फाँद पड़ा था। तुमने चंबल के उस प्रवाह से चींटी की तरह ही पार पहुँचा दिया। पर हे करुणामय, क्षुद्र चींटी को सागर के पार करके मेंढक का आहार न बनाना !

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—उज्जैन की राह

खुदादाद और खाँजहाँ

ख़ाँजहाँ—उज्जैन उज्जैन ! मुझे सदा आश्रय देनेवाली उज्जैन नगरी ! मैं आ गया।

खुदा०—दोहाई है जहाँपनाह, पागलों की तरह दौड़िएगा मत।

ख़ाँजहाँ—आ गया लेकिन अकेला ही आया हूँ ! तेरे भीतर घुसते मेरे पैर रुके जाते हैं, मेरा शरीर शिथिल हुआ जाता है—मेरे मुँह से बात नहीं निकलती। उज्जैन, मैं अकेला हूँ। तेरी भूमि में जन्म लेकर जो बालक-बालिकाएँ तेरी गोद में खेले थे, वे नहीं आए। जो तुझ पर अथाह स्नेह रखती थी, जिसकी मनोहर मंद मुसकान से तू अपने को धन्य समझती थी—वह मेरी बेगम—उज्जैन, नहीं आई ! वह नहीं आई ! मैं अकेला हूँ, तपी हुई मरु-भूमि की जलती हुई बालू के बीच खड़े खजूर के पेड़ की तरह मैं अकेला हूँ। लेकिन तो भी तू मुझे जगह दे—आश्रय दे। तू अगर मुझे स्थान देगी तो सुन उज्जैन, प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, मैं—जीता रहा तो—पाजी शाहजहाँ का कटा हुआ सिर

तुझे उपहार दूँगा। जगह दे, उज्जैन, मुझे जगह दे।

खुदा०—सुनो स्वामी, इतने चंचल मत होओ।

ख़ाँजहाँ—चंचल—मैं चंचल हो रहा हूँ—खुदादाद, मुझे मूर्ख कहो, अत्यंत विश्वास करनेवाला बुद्धिहीन कहो, मगर चंचल या घबराया हुआ मत कहो। पार पहुँचकर मैंने एक बार चंबल के जल की ओर देखा था। मैंने देखा, चंबल में पानी नहीं, खून बह रहा है। वह चंबल का खून मेरे मन में बस गया है। घड़ी घड़ी भर में जैसे उसी चंबल नदी का शब्द मेरे कानों में कह रहा है कि अगर कभी शाहजहाँ के खून से मेरे इस खून को धो सकोगे तो—तभी मैं निर्मल जल लेकर बहूँगी, नहीं तो सदा यों ही खून बहाती हुई बहती रहूँगी। खुदादाद, संकट और दुःख सहते सहते मेरा कलेजा जैसे फट गया है! अब नहीं सहा जाता। उज्जैन!—उज्जैन!

(नारायणराव का प्रवेश)

नारा०—पा गया—भगवान् ने मिला दिया। नवाब साहब, प्रभू, ठहरिए—आगे न बढ़िएगा।

ख़ाँजहाँ—कौन—तुम कौन हो?

नारा०—मैं चाहे जो हूँ, मेरी बात मानिए।

ख़ाँजहाँ—चुप बेईमान, उज्जैन मुझे देखकर उदास मुख लिए हुए सिर झुकाकर मुझे सलाम कर रही है। वह मेरी हालत को जान गई है। उज्जैन जान गई है कि

इस समय उसका मालिक विपत्ति में पड़ा हुआ है। आगे न बढ़ूँगा! उज्जैन—उज्जैन!

नारा०—उज्जैन पर इस समय मुग़लों का अधिकार है।

ख़ाँजहाँ—झूठ—बिल्कुल झूठ!—ख़बरदार बेईमान, अगर फिर यह बात कही तो धड़ पर सिर न होगा।

नारा०—सिर काट लीजिए तो मैं सब दुःखों से छुटकारा पा जाऊँ। आपकी यह दशा मुझसे देखी नहीं जाती।—लेकिन आगे न बढ़िएगा। इस समय भी, सब तरह से हीन होने पर भी, मालवेश्वर स्वाधीन हैं। दोहाई है जहाँपनाह, चंबल में सब डूब गया है, लेकिन स्वाधीनता बच गई है। उसे न डुबाइएगा।

ख़ुदा०—तुम कौन हो?—नारायणराव!

ख़ाँजहाँ—नारायणराव—तुम हो—हाय हाय, मैंने अपने हितकारी बूढ़े दीवान का अपमान किया—उसी की यह सज़ा मुझ मूर्ख को मिल रही है!

ख़ुदा०—ख़बर क्या है राव साहब?

नारा०—आप लोगों के आने में देर हो गई; इसीसे सब काम बिगड़ गया। प्रजा ने सुना—नवाब नहीं हैं। शत्रु ने ख़बर फैला दी कि नवाब नहीं हैं। हम लोगों ने भी समझ लिया था कि नवाब नहीं हैं। नवाब साहब के न होने की ख़बर पाकर कोई भी मुग़लों को रोकने का साहस नहीं कर सका। बिना ख़ून-ख़राबी के मालवा

बादशाह के हाथ में चला गया।

ख़ुदा०—ओफ़ ! सब ख़तम हो गया !

ख़ाँजहाँ—क्या हो गया—क्या ख़तम हो गया ? ख़बरदार ख़ुदादाद, अपनी ज़बान से यह बात न कहना। अभी तक ख़ाँजहाँ जीता है।

नारा०—और उनका गुलाम भी ज़िंदा है। हुज़ूर, आज्ञा दीजिए; मैं आपको क़िले पर क़ब्ज़ा करने में सहायता करूँ।

ख़ाँजहाँ—ना, तुम लोगों की सहायता अब नहीं लूँगा। तुम्हारे उदार पिता की भक्ति और वफ़ादारी का बदला जो मैंने दिया था उसी के कारण मेरी आज यह हालत है। नहीं तो सौ शाहजहाँ भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। अब सहायता नहीं लूँगा नारायणराव ! ऊँचे ख़यालवाले ब्राह्मण के बेटे, तुम भी ऊँचे ख़यालवाले हो। अपने पिता के अपमान का जो आज बदला तुमने दिया है, उसीके धक्के को मैं सँभाल नहीं सकता। मेरी उज्जैन अब मेरी नहीं रही ! सब गया ! बस, अब कुछ नहीं रहा !

(नेपथ्य में सेना का कोलाहल सुन पड़ता है)

ख़ुदा०—स्वामी, अब आगे न जाइए।

नारा०—शत्रु की सेना इधर ही आ रही है।

नेपथ्य में—जो कोई लोदी का पता बता देगा, वह जागीर पावेगा।

ख़ुदा०—हुज़ूरआली !

ख़ाँजहाँ—तो फिर कहाँ जाऊँ—कहाँ जाऊँ ख़ुदादाद! दक्खिन में इतने स्वाधीन राज्य हैं—क्या कोई भी मुझे आश्रय न देगा—सहारा न देगा ?

नारा०—एकांत में अपने को छिपाकर, क्या करना चाहिए, सो सोचिए। गुलाम को साथ ले लीजिए। मैं मुग़ल की मेहरबानी को लात मारकर आपकी गुलामी की भीख माँगने आया हूँ । दोहाई है नवाब साहब, मुझ ब्राह्मण को यह भीख दीजिए—विमुख न कीजिए।

ख़ाँजहाँ—ना ब्राह्मण—यह ख़ाँजहाँ की प्रतिज्ञा है। नहीं लूँगा, कह चुका, नहीं लूँगा। ब्राह्मण सलाम—उज्जैन सलाम।

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—क़िले का मैदान

(नेपथ्य में सेना का कोलाहल होता है)

(शाहजहाँ, महाबतख़ाँ और सैनिकों का प्रवेश)

शाह०—इतने दिनों के बाद अब निश्चिंत हुआ—क़िले और शहर पर पूरी तौर से दख़ल हो गया।

महाबत—पूरी तौर से दख़ल हो गया जहाँपनाह। क़िले के सब गुप्त और सुरक्षित स्थान हम लोगों के हाथ में आ गए। हम लोगों के आने से पहले ही लोदी के मरने की ख़बर शहर में फैल गई थी। लोदी के मरने की ख़बर पाकर बे-मालिक की पठान-सेना रोक-टोक करने का साहस नहीं कर सकी!

शाह०—अब कुछ चिंता नहीं है। लोगों में उड़ने-वाली ख़बर तक ने मुझसे आगे मालवे में आकर मेरी सहायता की। मेरे हमले के पहले ही उस ख़बर ने आकर दिलेर-दबंग पठानों की सेना को उत्साहहीन और निहत्था कर दिया। अब मेरी चिंता छूटी · वज़ीर, इतने दिनों के बाद मैं निश्चिंत हुआ—

(आजफ़ का प्रवेश)

आजफ़—नहीं जहाँपनाह, यह बात कहने का समय अभी तक नहीं आया। जब तक आप लोदी को पकड़कर आगरे नहीं ले जा सकते तब तक अपने को निश्चिंत न समझिएगा।

शाह०—लोदी का भूत आपकी आँखों के सामने नाच रहा है—इसीसे आप निश्चिंत नहीं हो पाते। मैंने चंबल नदी के किनारे एक पेड़ की जड़ में उसकी लाश पड़ी देखी है, इसीसे मैं निश्चिंत हूँ।

आजफ़—ईश्वर आपको निश्चिंत करे—ग़ुलाम को इससे बढ़कर ख़ुशी और नहीं हो सकती।

शाह०—निश्चिंत होने में संदेह क्या है वज़ीर?

आजफ़—ख़ाँजहाँ को मरते किसी ने अपनी आँखों नहीं देखा है; सब ने सुना ही है।

शाह०—मैंने ख़ुद देखा है; तुम विश्वास करो। लोदी अगर जीता होता तो अब तक वह मालवे न आकर और कहीं ठहर नहीं सकता था। अगर लोदी चंबल में डूबने से बच गया होगा तो भी शोक और दुःख के बोझ से दबकर मर गया होगा। यह बात तुम निश्चित रूप से जान रक्खो। वज़ीर, बुढ़ापे में बेगम और बेटी-बेटे का मरना बड़ा भारी दुःख है। उस दुःख के धक्के को बुड्ढा लोदी किसी तरह नहीं सँभाल सकता। पत्थर भी इस चोट से चूर हो जा सकता है। आज उसके ऐसे मज़बूत उज्जैन के

क़िले पर मुग़लों का झंडा फहरा रहा है—यह देखकर उसका मुर्दा भी होता तो वह दौड़ा आता। लोदी मर गया है और उसका वह मज़बूत शरीर मिट्टी में मिल गया है।

(एक जासूस का प्रवेश)

जासूस—जहाँपनाह, जल्द लोदी का पीछा करने की आज्ञा दीजिए।

दोनों—लोदी कहाँ है ?

जासूस—अभी अभी मैंने देखा है, दो बुड्ढे घोड़ों पर सवार होकर हैदराबाद की सड़क पर तेज़ी के साथ गए हैं। उनमें एक लोदी था।

शाह०—तुमने कैसे जाना कि वह लोदी ही था ?

जासूस—वह लोदी के सिवा और कोई नहीं है। आगरे के दरबार में जहाँपनाह के सामने वह जिस पोशाक से गया था वही पोशाक और वही ताज पहने था। वैसा ही लंबा डील और ताक़तवर बदन था। बहुत ही तेज़ी से गया है। जहाँपनाह, अभी पीछा करने की आज्ञा दीजिए।

आजफ़—जहाँपनाह, अब भी क्या आप निश्चिंत होना चाहते हैं ?

शाह०—क्या करना चाहिए—सोचकर ठीक करो। पीछा करना मुमकिन नहीं है; तो भी फ़र्ज है फ़र्ज।

आजफ़—पीछा करने मैं ही जाता हूँ। और किसी के

जाने से काम नहीं चलेगा। आप चलकर बुरहानपुर में छावनी डालिए। वहाँ दरबार कीजिए और उस दरबार में सब सामंत राजों को न्यौता देकर बुलाइए। जो न आवे, उसके विरुद्ध फ़ौरन् युद्ध ठान दीजिए। ऐसा करने से वे लोग नवाब से मिलकर कोई साज़िश नहीं कर सकेंगे।

शाह०—बहुत अच्छी तरकीब है। मैं इसी घड़ी बुरहानपुर के लिये सफ़र करता हूँ।

आजफ़—डर नहीं है जहाँपनाह.! उज्जैन के क़िले के साथ नवाब का सब कुछ चला गया। और राजा लोग मालवे के नवाब से मिलकर साज़िश कर सकते थे; लेकिन कंगाल के साथ मिलकर हिंदोस्तान के शाहंशाह को नाराज़ करने की हिम्मत किसी को नहीं हो सकती। अब घड़ी भर की देर न कीजिए—अभी यहाँ से चल दीजिए। याद रखिए जहाँपनाह, आगरे के सिवा और कहीं नवाब को दम भर भी विश्राम न करने दूँगा।

शाह०—हाय ईश्वर! निश्चिंत होकर भी मैं निश्चिंत नहीं हो सका!

(सबका प्रस्थान)

छठा दृश्य

स्थान—वन-भूमि

नारायणराव

नारा०—चींटी ! चींटी ! मैं शायद उससे भी गया-गुज़रा हूँ। पहाड़ के पास पहुँचने की कोशिश करता हूँ, मगर प्रचंड आँधी के झोंके से बहुत दूर हट जाता हूँ। बादशाह को सिर्फ़ दूर से देखता हूँ। पास पहुँचने की शक्ति मुझमें कहाँ है ! वृथा अभिमान के मारे प्रतिज्ञा कर ली ! कुछ न कर सकूँगा ? जिनकी सहायता के लिये व्याकुल हो रहा हूँ वह स्वामी मुझे छोड़कर चले गए। जी की बात जी में ही रह गई। क्या करूँ—क्या करूँ ?

(नगरवासी का प्रवेश)

नगर०—महाराज, हम तैयार हैं।

नारा०—भाई, अपने दुःख की बात तुमसे क्या कहूँ ! तुम लोग मेरे कहते ही संसार की माया-ममता छोड़कर मेरे साथ चलने को तैयार होकर आए हो—लेकिन मैं तो अब तुम लोगों को साथ न ले जा सकूँगा।

नगर०—क्यों महाराज ?

नारा०—अभी नवाब मुझे मिले थे।

नगर०—मिले थे ? कहाँ महाराज ?

नारा०—यहीं मुलाक़ात हुई थी। एक दिन जो महा शक्तिशाली उज्जैन के नवाब थे—एक दिन दिल्ली के वर्त्तमान बादशाह जिनकी कृपा पाने के लिये कंगाल की तरह जिनके द्वार पर आए थे, वही बहादुर ख़ाँजहाँ लोदी आज एक फ़क़ीर की हैसियत से मिले थे ! ऐश्वर्य का चिह्न पोशाक भर उनके पास बाक़ी है। न कोई साथी है, न कोई सवारी है। मैंने गुलामी करने का इरादा ज़ाहिर किया था। लेकिन इस हालत में भी नवाब ने उसे मंज़ूर नहीं किया ! मंज़ूर नहीं किया—मंज़ूर करेंगे भी नहीं। इस हालत में भी नवाब की प्रतिज्ञा अटल है। अब मैं क्या करूँ ?

नगर०—स्वामी, हम लोग तो अपनी औरतों और बाल-बच्चों से भी नहीं मिले। आपकी आज्ञा मानकर चले आए हैं।

नारा०—तुम्हीं लोग जाकर उनकी सहायता करो।

नगर०—हम लोगों ने तो आपका साथ देने की प्रतिज्ञा की है। हम लोग आपका साथ नहीं छोड़ेंगे।

नारा०—अब मैं क्या करूँ भाई, तुम्हीं बताओ।

नगर०—क्या कीजिएगा, सो आप ही ठीक कीजिए। और भी जो लोग हमारे साथ जाना चाहते हैं उन्हें लेकर मैं आता हूँ। हम लोग आपका साथ नहीं छोड़ेंगे।

(नगरनिवासी का प्रस्थान)

नारा०—भगवान्, क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आता। (सोफ़िया का प्रवेश)

सोफ़िया—मैं बतला दूँगा।

नारा०—तुम कौन हो ?—तुम हो !

सोफ़ि०—आप कौन हैं ?—आप हैं !

नारा०—तुम यहाँ किस तरह आए ?

सोफ़िया—आप यहाँ किस तरह आए ?

नारा०—मैं चींटी हूँ, चंबल की लहरों में बह आया।

सोफ़िया—मैं रंगीन तितली हूँ, हवा में उड़ती आ गई।

नारा०—बालक, तुम भी एक पहेली हो। इस कठिन समस्या के समय तुम फिर मेरा दिमाग़ ख़राब करने के लिये कहाँ से आ गए !

सोफ़िया—अगर मेरे आने से आपका दिमाग़ ख़राब हो तो कहिए, मैं चला जाऊँ। अगर आप कुछ जानना चाहते हों तो बता जाऊँ। लेकिन सुनो मन्सबदार, उससे पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपकी यह हालत किसने की ?

नारा०—बहुत बातचीत करने का मौक़ा नहीं है। केवल इतना कहता हूँ बालक, तुमने ही मेरी यह दशा की है।

सोफ़िया—उसे मैं अभाग्य समझूँ या सौभाग्य ?

नारा०—मेरा यह परम सौभाग्य है। लेकिन इसपर भी पूर्ण सौभाग्य नहीं हुआ। नवाब से बदला लेना चाहा था, बदला पूरी तरह से ले लिया। अब मैंने नवाब की सहायता करना चाहा था, पर उन्होंने नामंजूर कर दिया।

सोफ़िया—आप नवाब की क्या सहायता करना चाहते हैं?

नारा०—चाहता हूँ! बालक, मैं अगर नवाब की साधारण सेवा और सहायता भी कर सकूँ तो अपने जन्म को सफल समझूँगा। मैंने अपने मालिक को जिस बुरी दशा में देखा है वह मुझे नहीं भूलती! उनके लिये जान दे दिए बिना मुझे शांति नहीं मिलेगी।

सोफ़ि०—तो सुनिए मन्सबदार! मुझे भी जीने से शांति नहीं मिल सकती। मैं भी अगर नवाब की सहायता न कर सका, तो मेरे जीवन में जो एक बड़ी भारी कमी देख पड़ती है वह पूरी नहीं हो सकती। आपने नवाब के दर्शन पाए—आप धन्य हैं। मैं बदनसीब हूँ—अभी तक उनके दर्शन नहीं पा सका।

नारा०—अच्छा, मैं उनके दर्शन करा दूँगा।

सोफ़िया—तो मैं भी बता दूँगा कि क्या करना चाहिए।

नारा०—बता दोगे क्या, अभी बता दो। मेरे साथी

बड़ी उत्कंठा के साथ मेरी राह देख रहे होंगे।

सोफ़ि०—बता दूँगा तो मुझे क्या दीजिएगा ?

नारा०—मेरे पास और क्या है बालक ! मैं तुमको यह अपना जीवन ही दे डालूँगा।

सोफ़ि०—तो फिर मैं तुम्हारा मालिक हो जाऊँगा मन्सबदार !

नारा०—मालिक क्यों, उस्ताद कहो। अगर तुम्हारे द्वारा मेरी यह विषम समस्या हल हो जायगी तो मैं तुमको अपना उस्ताद समझूँगा। तुमने भाई, जिस दिन से दर्शन देकर एक अभिमानिनी मुसलमानी के हाथ से मुझे उबार लिया है उसी दिन से एक तरह मैं तुम्हारे हाथ बिक गया हूँ। आज मुझे फिर उबार लो—जो कुछ बचा है वह भी तुम्हारा हो जाय।

सोफ़िया—मन्सबदार !

नारा०—मुझे नारायणराव कहो—मेरा नाम नारायण-राव है। बहुत दिन हुए, मैं मन्सबदारी को लात मार चुका हूँ।

सोफ़ि०—तुम अपने को ज़ाहिर करने के लिये इतने व्याकुल क्यों हो नारायणराव ! अगर नवाब की सहायता करने का ही तुम्हारा इरादा है तो जिस तरह हो सके नवाब की सहायता करो। उसके लिये अपने को ज़ाहिर करने की क्या ज़रूरत है ?

नारा०—तो फिर क्या करूँ ?

सोफ़ि०—अपने को छिपाओ । नवाब जिसमें न पहचान सकें, ऐसी पोशाक पहनो ।

नारा०—वाह वाह ! कैसा सुंदर सहज उपाय बता दिया ! यह बात तो मुझे सूझी ही नहीं थी ! यह ले मायामय बालक, यह ब्राह्मण आज अपना जीवन तेरे कोमल हाथों में अर्पण करता है ।

सोफ़िया—नारायणराव—नारायण ! विस्मय न करो—एकटक आश्चर्य की दृष्टि से मेरी तरफ़ मत देखो ! इस साधारण बालक को ऐसा दान पाने की सपने में भी आशा नहीं थी ! इसीसे मेरा हाथ काँप रहा है—मेरे कमज़ोर हाथ इस महा दान के बोझे को सँभाल नहीं सकते । अब तुम खड़े मत रहो; जाओ, देर करने से नवाब की सहायता नहीं कर सकोगे ।

नारा०—और तुम ?

सोफ़िया—मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा ।

नारा०—मैं किस तरह तुम्हें छोड़कर रह सकूँगा ?

सोफ़िया—अपने को भूलो मत नारायणराव ! अभी यह मत भूल जाओ कि मैं तुम्हारा कौन हूँ । जो आज्ञा देता हूँ, उसका पालन अभी करो ।

नारा०—बालक, तुम भी एक पहेली हो ।

(प्रस्थान)

सोफ़िया—आकर फिर बातचीत करना जनाबआली, इस समय जाओ। (स्वगत) हँसूँ या रोऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। बटोही बालक इस जीवन में यह अमूल्य रत्न पाकर धन्य हो गया। लेकिन जो अभिमानिनी मुसलमानी शाहज़ादों की प्रार्थना नामंजूर करके घर छोड़कर चली आई, उस सोफ़िया को तो संतोष नहीं हुआ! हाथ-पैर काँप रहे हैं; मुझे बचा शिला, मुझे बचा। नहीं तो गिर पड़ूँगी। मुझे सँभाल। (नारायण का फिर प्रवेश)

सोफ़िया—फिर लौट आए?

नारा०—तुम्हारा नाम क्या है?

सोफ़िया—नाम न जानने से क्या कुछ हर्ज है?

नारा०—हाँ। जानकर उसे दिन-रात जपा करूँगा। बालक, तुमने मेरी जाति और मेरे धर्म को बचा लिया है।

सोफ़िया—अच्छा तुम्हीं मेरा कोई नाम रख दो।

नारा०—मैं नाम रख दूँ!

सोफ़िया—हर्ज क्या है? आज से मेरी नई ज़िंदगी शुरू हुई है। नया नाम रख दो, वही नाम लेकर पुकारो, मैं बोलूँगा।

नारा०—तुम शिला का सहारा लिए हो—शिला की ही तरह तुम्हारा हृदय कठिन है—तुम शिला हो।

सोफ़ि०—वाह—वाह! कैसा मीठा नाम है—शिला—शिला—हाँ नारायणराव, मैंने अपने एक हिंदू नातेदार के

मुँह से सुना है कि तुम लोगों के एक देवता भी शिला हैं; क्या यह सच है ?

नारा०—हाँ हैं। लेकिन वह करुणामय हैं। तुम कठिन, ममताहीन, हृदयहीन शिला हो। ना ना, तुम्हारी आँखें बहुत ही मनोहर, बड़ी ही कोमल हैं। तुम स्नेहमयी शिला हो ! शिला !

सोफ़िया—क्यों ? इस तरह एकटक क्यों मेरी ओर ताक रहे हो ?

नारा०—शिला ! एक आदमी पर नज़र पड़ने के डर से कुछ दिन तक मैंने ज़मीन से आँख नहीं उठाई। आज उस कमी को पूरा कर रहा हूँ।

सोफ़िया—दोहाई है करुणामय ! मुझे छोड़ो—कर्त्तव्य को देखो।

नारा०—अब फिर कब तुमको देखूँगा ? (सोफ़िया मुँह फेर लेती है) नहीं, मुझसे अपराध हुआ; सलाम।

(नारायणराव का प्रस्थान और सोफ़िया का गान)

रसिया—सारंग

मेरे प्यारे हो साजनवा; तुम पर तन मन डारूँ वार।
मैं न तुम्हारे योग्य कभी थी, मुझपर ऐसा प्यार !
यह उदारता नाथ तुम्हारी दिया मुझे भी तार।
अपनाया—उत्साह बढ़ाया दासी की रख लाज ;
फूली नहीं समाती हूँ मैं, देखो प्यारे आज।

तुम उदार हो, स्वामिभक्त हो, करते पर-उपकार;
धर्मनिष्ठ हो, ब्राह्मण सच्चे, धन्य तुम्हें सौ बार।

(दादाजी का प्रवेश)

दादा०—फूल का मधुर मधु है—फूल का मधुर मधु है। न खट्टा है—न कड़वा है, ख़ालिस मधु है। लेकिन भौंरा बड़ा ही बेवकूफ़ है—पहचान नहीं सका—कमल को चंपा समझकर भाग गया। सोचा था, कान पकड़कर उसे ले आऊँ। लेकिन फिर सोचा—पहले कमल कोमल था, अब कठोर हो गया है। लड़ाई करने के लिये कमर कस ली है।

सोफ़िया—क्यों दादाजी, मुझे एक पलटन दे सकते हो?

दादा० दे सकता हूँ। लेकिन बेटी, किससे लड़ाई ठानेगी? प्रेम के साथ या वीर के साथ?

सोफ़िया—दादाजी, तुमने यह बात ठीक नहीं कही। जो प्रेम से ख़ाली है वह कहीं वीर हो सकता है?

दादा०—वाह वाह, ख़ालिस शहद है—तिरस्कार करो, इस मधुर स्वर से मुझे तिरस्कार करो। तुम्हारे इस शहद की छींटें पड़ने से मेरी आँखों का जाला कट जाय। मैं तुम्हें अच्छी तरह, साफ़ नज़र से, ज़रा देख लूँ।

सोफ़िया—क्यों दादाजी! मुझे क्या तुमने कभी देखा नहीं!

दादा०—कहाँ देखा सोफ़िया? अगर देखता तो तुम्हें

रोकने की इतनी कोशिश क्यों करता ! कोशिश करके मैं क्या कर सका सोफ़िया । तुम दोनों के मिलन को तो नहीं रोक सका !

सोफ़िया—दो क़ब्रें देखकर मैदान नाँघकर यहाँ आई हूँ । एक में लोदी-कुल-गौरव अजमतख़ाँ अपने तीन सौ सिपाहियों के साथ सदा के लिये विश्राम कर रहे हैं । दूसरी में मालवे की बेगम, उनकी प्यारी बेटी और बाँदियाँ सो रही हैं । शांत, करुण अंधकार ज़ालिम की निठुर नज़र से बचाने के लिये अत्यंत यत्न के साथ उन्हें ढके हुए है । महाराज, उस अंधकार के पर्दे में अपने को ढकने का लोभ दबाकर मैं बढ़ी हुई चंबल में फाँद पड़ी ! क्यों फाँद पड़ी, आप जानते हैं ? आगरे की राह में चलते चलते एक सजीव प्रकाश-चित्र मैंने देखा था । हर्ष और विषाद की कूची से, सुनहली किरणों के रंग से, उसकी एक नक़ल खींचने की प्रबल इच्छा मेरे मन में पैदा हुई । वह तसवीर मैंने खींची है, डरते डरते उसपर रंग, फैलाया है ! अगर मेरा खींचा चित्र उस दिव्य चित्र के साथ न मेल खाता तो मेरा सारा जीवन विषाद से भरा और उद्देश से ख़ाली हो जाता । मेरी मौत के लिये किसी दूसरे को कुछ कष्ट उठाना न पड़ता । मैंने जो देखना चाहा था, वही देखा । ब्राह्मण दिव्य ज्योति से प्रकाशित है—ब्राह्मण ने निर्बल की सहायता करने के इरादे से ऐश्वर्य को लात मार दी है ।

दादा०—अच्छी बात है बेटी। तुम ब्राह्मण को देखकर तृप्त हुई। मैं एक बार तुमको देखकर तृप्त होऊँ।

सोफ़िया—मुझे देखोगे? राजपूत, तुम मुझे किस रूप में देखना चाहते हो?

दादा०—जिस रूप से लोगों के घरों में कल्याण बाँटती हो वही रूप क्या तुम मुझे दिखा सकती हो?

सोफ़िया—आशीर्वाद दो, क्यों नहीं दिखा सकूँगी?

दादा०—आशीर्वाद देता हूँ; तुम्हारे द्वारा वीर बालाओं की जाति का मान बढ़े—ब्राह्मण के बालक का धर्म बचे।

सोफ़िया—मुझे नहीं मालूम कि तुम्हारे इस आशीर्वाद के उत्तर में मैं क्या कहूँ।

दादा०—सिसोदिया-कुल के कमल, बड़ों को पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया जाता है।

सोफ़िया—मैं तो नहीं जानती। मुझे दिखा दो। (दादाजी वैसे ही प्रणाम करके दिखाते हैं) वाह वाह, (ताली बजाती है) दादाजी, तुमने मुझे प्रणाम किया।

दादा०—बेटी, मैं सदा से तुम्हारी जाति को प्रणाम करता आता हूँ।

सोफ़िया—(प्रणाम करती है) मैं भी इस जीवन में पहले पहल तुमको प्रणाम करती हूँ।

दादाजी—सरदार! (जंगली का प्रवेश)

जंगली—महाराज!

दादाजी—देखो, यह मेरी जान से प्यारी बेटी है; इसे मैं तुम्हें सौंपता हूँ। यह जो हुक्म दे, वही करना।

जंगली—आओ बेटी, मेरे साथ आओ। यह हम लोगों के मालिक हैं। इतने दिन से न-जानें क्यों हम लोगों को छोड़ गए थे। आज आकर हम लोगों को रानी दी। आओ रानी, मेरे साथ आओ।

(प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य

स्थान—बड़ा भारी वन

(नेपथ्य में सेना का कोलाहल सुन पड़ता है)

ख़ाँजहाँ और ख़ुदादाद

ख़ाँजहाँ—भाई, किसी ने आश्रय नहीं दिया।

ख़ुदा०—कोई नहीं आश्रय देगा। दुनिया कायरों से भर गई है।

ख़ाँजहाँ—पानी की बहिया की तरह शत्रु की सेना आ रही है। मैं अकेला और निराश्रय हूँ। बीच में कुछ भी फ़ासला नहीं है। शत्रु सिर पर आ पहुँचा है। बराबर भूखे-प्यासे रहने से मुझमें चलने की भी ताक़त नहीं रही है—सारा शरीर शिथिल हो रहा है। कुछ भोजन न मिलने से मेरा घोड़ा भी राह में मर गया। दुशमनों की फ़ौज बहिया की तरह चली आ रही है! ख़ुदादाद, अब क्या करना चाहिए?

ख़ुदा०—अब स्वामी, जीवन पर ममता किसलिये है? अब इधर-उधर भागना बेकार है। फिरिए स्वामी, फिरिए। इस बहिया में फाँदकर, एक बार खलबली मचाकर, सदा के लिये सो जाइए।

ख़ाँजहाँ—जीवन पर ममता ! क्या उसीसे मैं इधर-उधर भाग रहा हूँ ? प्राण बचाने की अभिलाषा से ही क्या पागलों की तरह मैं भागता फिरता हूँ ? बदला ! बदला ! तीव्र बदला लेने की इच्छा सदा काँटे की तरह हृदय में खटका करती है—आग की तरह सुलगा करती है ! अगर इस वहिया में फाँदने से उस पाजी बादशाह का सिर मैं इस हाथ के पास पा सकूँ तो इसी घड़ी फिरूँ—इसी घड़ी वहिया में फाँद पड़ूँ ! अभी शाहजहाँ का सिर काटकर इस लोक से चल बसूँ। बदला ! बदला ! केवल बदला लेने की आशा से मैं अभी तक कोशिश करके अपने प्राणों की रक्षा कर रहा हूँ। सिर्फ़ बदले ही का ख़याल दिन-रात मेरे मन में बना रहता है। ईश्वर, वज्र गिरा; मैं उसी की आग से शैतान की सारी सेना को जलाकर ख़ाक कर दूँ !

ख़ुदा०—सामने वह घना जंगल है। इसके भीतर शत्रु नहीं जा सके। अगर बदला लेने के लिये जीने की इच्छा है तो इसी के भीतर घुस चलिए।

ख़ाँजहाँ—तो भाई, इसी के भीतर चलो। मरूँ क्यों ! इतनी जल्दी मौत को गले लगाने की क्या ज़रूरत है ! मरना तो एक दिन है ही। बेगम, बेटी, बेटा, बाँदियाँ—सब बदले की आशा करके स्वर्ग से मेरी ओर देख रहे हैं। अगर मैं बदला लिए बिना मर जाऊँ तो ख़ुदादाद, वे

मुझसे नहीं मिलेंगे—मुझे नफ़रत की निगाह से देखेंगे। यह जंगल मुझे आश्रय देगा। शाहजहाँ के ख़ून का प्यासा और बदले का भूखा मैं आज इसका मेहमान हूँ। चलो भाई, यह मौत की यात्रा है। इस राह में तुम्हीं एक मेरे साथी बच रहे हो। आओ, इस जंगल में चलें।

(दोनों का प्रस्थान। नेपथ्य में कोलाहल होता है)

(सेना सहित शाहजहाँ का प्रवेश)

शाह०—यहीं पर ग़ायब हो गया। जाने दो, बस, जाल डालकर मैंने शेर को गुफ़ा के भीतर क़ैद कर लिया है। अब निकलकर कहाँ जायगा ? अब तो उसे एक साधारण बालक भी मार सकता है। जाओ, चारों तरफ़ जाओ। हर घाटी और पगडंडी को घेर लो। यही उसका आख़री सहारा है। देखो, कोई उसे जान से न मारना। मर जाने से लोदी हारने का ज़ायका नहीं जान सकेगा। वह सहज में छुटकारा पा जायगा। उसे जंजीर में बाँधकर आगरे ले चलना होगा। जल्दी जाओ, कोई राह सिपाहियों से ख़ाली न रहे। (जासूस का प्रवेश)

जासूस—जहाँपनाह, एक पठान का बालक इस राह से जंगल के भीतर जा रहा है।

शाह०—तो निश्चय ही वह उस जगह को जानता है जहाँ लोदी छिपा हुआ है। जो लोग बाक़ी हैं वे मेरे साथ इस राह में चलें। (महाबतख़ाँ का प्रवेश)

महा०—उधर न जाइएगा—आगे न बढ़िएगा। दोहाई है जहाँपनाह, घायल शेर की खोह में न घुसिएगा।

शाह०—कौन—महाबतख़ाँ! दिल्ली के बादशाह के प्रधान सेनापति! ख़ुद ख़ाँजहाँ से लड़ने में असमर्थ होकर क्या मुझसे इस तरह की दिल्लगी करने आए हो? क्या मैं बिल्कुल ही कमज़ोर और बुजदिल हूँ?

महा०—जहाँपनाह, दिल्लगी करने नहीं, आपको बचाने आया हूँ।

शाह०—जब तुम लोदी का पीछा करने से पीछे हट गए तब मैंने समझा था कि बहादुर महाबतख़ाँ को जीवन के मोह ने घेर लिया है। लेकिन अब देखता हूँ कि तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है।

महा०—दिमाग़ नहीं ख़राब हो गया है जहाँपनाह। जिस पेड़ को मैंने अपने हाथ से लगाया है उसकी जड़ कटते नहीं देख सकता, इसीलिये दौड़ा हुआ आया हूँ। ख़ाँजहाँ के साथी और सहायक नहीं हैं; उसके लिये कहीं आश्रय नहीं है; लेकिन हाथों में ताक़त और जी में जोश वैसा ही बना हुआ है। जो शक्ति मा के रूप से सब जीवों की रक्षा करती है वही शक्ति आपकी राजधानी में पैदा होकर, माता जिस ममता से अपने बच्चे की रक्षा करती है उसी ममता के साथ, ख़ाँजहाँ को बचाने के लिये उसके साथ यहाँ तक आई है। मैंने अपनी आँख से बढ़ी हुई चंबल नदी

की भयानक लहरों के ऊपर उस शक्ति को आते देखा है।

शाह०—बस सेनापति ! अभी तक बादशाह की निगाह में तुम्हारी इज़्ज़त बनी हुई है।

महा०—महाबतख़ाँ की इज़्ज़त ख़ुद उसकी निगाह में है। हित चाहनेवाले मित्र के तौर पर जो कहता हूँ सो सुनिए। समझ-बूझकर जंगल के भीतर पैर रखिएगा। जहाँपनाह, एक बात और सुन लीजिए। महाबतख़ाँ को इस बात का अभिमान है कि वह माता का रूप रखनेवाली शक्ति महाबतख़ाँ से ही पैदा हुई है।

(महाबत का प्रस्थान)

शाह०—पागल हो गया है—बिल्कुल पागल ! महाबतख़ाँ, तुमको सज़ा देने का मुझे अधिकार नहीं है—तुम्हारे कई एहसान मुझपर हैं—नहीं तो अभी मैं तुम्हारे इस घमंड को समाप्त कर देता। देर मत करो सिपाहियो, मेरे साथ इस जंगल की पहाड़ी घाटी में घुसो।

(आजफ़ का प्रवेश)

आजफ़—हाँ हाँ, भीतर मत घुसिएगा—भीतर मत घुसिएगा। बड़ी मुशकिल से बने हुए काम को बिगाड़िएगा नहीं ! ख़ुद मुसीबत में मत पड़िए।

शाह०—आप भी मना करते हैं !

आजफ़—और किसने मना किया था ?

शाह०—महाबतख़ाँ ने।

आजफ़—जहाँपनाह, महाबतख़ाँ के बराबर आपका हित चाहनेवाला मित्र और नहीं है। जंगल को चारों तरफ़ से घेर लीजिए। भूख से व्याकुल होकर ख़ाँजहाँ आप आत्मसमर्पण कर देगा।

शाह०—अगर न करे ?

आजफ़—तो सिंह को भूख के मारे उठने की शक्ति से रहित कर लीजिए—फिर जंजीर लेकर उसके सामने जाइए।

शाह०—उससे शाहजहाँ का गौरव कुछ भी न होगा। समझ की ग़लती से मामूली बात को बढ़ाकर, जिस सिंह को छेड़कर मैंने ललकारा है उसे लाचारी की हालत में पकड़ना मैं नहीं पसंद करता। वज़ीर, मुझे जाने से मत रोको। यह पहाड़ी जंगल ऐसा है कि तुम या मैं कोई भी इसकी राहें पूरी तौर से नहीं जानता। मुमकिन है कि दुशमन हाथ में आकर ज़रा सी हमारी गफ़लत से किसी और गुप्त राह से निकल जाय। मैं यहाँ पड़े रहकर ज़रा भी वक़्त गँवाना नहीं चाहता। मैं अभी जंगल के भीतर घुसूँगा। अगर ऐसी हालत में भी मैं ख़ाँजहाँ को पकड़ नहीं सका तो आगरे में उसे बुलाकर अपना तख़्त-ताऊस उसे दे डालूँगा।—देखो सिपाहियो, आगे बढ़ो, पीछे मत हटना।

आजफ़—अच्छी बात है; तो फिर सब सिपाहियो,

होशियारी से सब रास्ते घेर लो ! जहाँपनाह, तो फिर आप इस राह से जाइए; मैं भी दूसरी राह से जंगल में घुसता हूँ ।

(सब का प्रस्थान)

(सोफ़िया और जंगली का प्रवेश)

सोफ़ि०—अजी सरदार, उन लोगों ने तो सब रास्ते घेर लिए !

जंगली—रानी, वे सब सीधी सहज राह से गए हैं। पहाड़ तो हम लोगों का अड्डा है। पहाड़ पर वे लोग हम भीलों की राह कभी नहीं बंद कर सकते । डर क्या है रानी, हम लोग तुम्हें पहाड़ के ऊपर पहुँचा देंगे ।

(भील-सेना का प्रवेश)

जंगली—भाइयो, बादशाह ने सब रास्ते रोक दिए हैं।

१ भील—इससे क्या हो सकता है सरदार ! हम लोग पहाड़ पर उछलकर जा सकते हैं ।

जंगली—हमारी रानी को लेकर उछलकर पहाड़ पर चढ़ जाओगे ? होशियारी से यह काम करना ।

२ भील—सरदार, आपको भी संदेह है ? रानी को क्या हम यहीं छोड़ जायँगे !

जंगली—चलो रानी । वे साले उधर चक्कर से इस चोटी पर पहुँचेंगे। हम लोग इसी बीहड़ राह से एकदम पहाड़ पर उछल जायँगे। देखो रानी, वे लोग पहुँच गए। वह देखो, दो भील भी डोली लिए आ रहे हैं ।

सोफि०—पिता का और दादाजी का आशीर्वाद लेकर आई हूँ। मेरा विचार कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। जिस ईश्वर ने मुझे चंबल से उबारकर यहाँ पहुँचाया है, वही इस पहाड़ पर पहुँचने में भी सहायता करेंगे। मालवेश्वर, तुम कहाँ हो, जल्द अपनी बेटी को दर्शन दो।

(प्रस्थान)

पर्दा गिरता है

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—जंगल

खाँजहाँ

खाँजहाँ—अब भी अगर जीवन बचा सकूँ तो एक दफ़ा बदला लेने की कोशिश करूँ। अब भी अगर जीवन रह सके तो बहादुरी के साथ तख़्त-ताऊस के पास पहुँच-कर बेईमान मुग़ल को हथियार की झनकार सुना दूँ। जिस बहादुरी के बल से मैं आगरे के तख़्त पर बैठ सकता था वही बहादुरी दिखाकर, लात मारकर, शाहजहाँ को तख़्त के नीचे गिरा दूँ। इतनी दिलेरी, इतनी बहादुरी, इतना प्रेम, इतनी बुद्धि और इतनी प्रजा के हित की चाह—ये सब गुण रहते भी आज मैं अपने जीवन को बचाने के लिये दूसरों का मोहताज हूँ! क्यों मैंने आगरा छोड़ दिया! सल्तनत का फाटक मेरे कब्ज़े में था, मैंने क्यों उसे खोल दिया? क़ायर नीच को सिंहासन पर बैठाने की राह मैंने क्यों साफ़ कर दी? मैं ख़ुद अगर सीढ़ी सीढ़ी करके सल्तनत के ऊँचे पद पर चढ़ता तो

किसकी ताक़त थी जो मुझे रोकता ? विस्मृति के भयानक गढ़े में अगर मैं बाबर के वंश को दफ़न कर देता तो किसकी मजाल थी जो उसे उबार लेता ? हिंदोस्तान को अगर पठानों के अधिकार में कर लेता तो क्या यही अंजाम होता ? सिर्फ़ भलमंसी के फेर में पड़कर मैंने सब खो दिया ! कपटी का विश्वास करके, विश्वास-घात से नफ़रत करके, मैंने सल्तनत, ऐश्वर्य, मान, बेगम, बेटी, बेटा, परिवार सब गँवा दिया ! आगरे की वह भयानक रात ! तेरी याद करते ही मेरा खौलता हुआ खून बर्फ़ की तरह जम जाता है—ज़बान को जैसे लकवे की बीमारी हो जाती है। मेरी बेगम, सौ बाँदियाँ, बसरा-गुलाब सी सुंदरी कन्या रज़िया, सब ने मेरी इज्ज़त पर अपने को निछावर कर दिया ! देवियो, तुमने यह क्या कर डाला ? इतिहास में कभी ऐसी बात नहीं देखी-सुनी गई ! कवि ऐसी कल्पना करने में भी बेहोश हो जायँगे। दम भर में क़तार की क़तार खड़े होकर सब ने अपनी जान दे दी ! इस भलमंसी और ईमानदारी में ही मेरा सत्यानास हो गया। अगर अब जीवन बचा सकूँ तो इस भलमंसी और ईमानदारी को पैरों से रौंद डालूँ ! क्या कोई ऐसी शक्ति नहीं रखता कि कम से कम एक दिन के लिये मेरे प्राण बचा ले ?

(भील-बालिका के वेश में सोफ़िया का प्रवेश)

सोफ़ि०—मैं बचा सकती हूँ।

ख़ाँज०—तुम बचा सकती हो ? तुम मुझे पहचानती हो ?

सोफ़ि०—तुम चाहे जो हो, प्राणों की भिक्षा चाहते हो। यही सुनकर मैं प्राण देने आई हूँ।

ख़ाँज०—मेरी तक़दीर में यहाँ तक बदा था ! प्राणों की भीख माँगते देखकर वह भीख देने एक औरत आई है !

सोफ़ि०—तुमने यह कैसे समझ लिया कि मैं औरत हूँ ? अगर मर्द ताक़त से होता है, तो वह बल मुझमें है।

ख़ाज०—पागल औरत, तू इस सूनसान जंगल में क्या करने आई है ? तेरे सब अंग मक्खन से बढ़कर मुलायम हैं, शरीर में चंद्रमा की ऐसी कांति है—तू रूप का सागर देख पड़ती है ! उस सागर की सुंदर लहरों को अंधकार में ढकने के लिये यहाँ आने को तुझे किसने सिखाया है लड़की ? यह पहाड़ी जंगल बहुत ही निठुर है ! यहाँ के पेड़ और लताएँ, यहाँ की शिलाएँ, यहाँ के झरने सब दया से शून्य हैं। भूख से व्याकुल होने पर तू खाने के लिये फल नहीं पावेगी—प्यास से बेचैन होने पर पानी नहीं मिलेगा। थककर आराम करना चाहेगी तो उलटे आफ़त में फँसेगी। कहाँ तक कहूँ, यहाँ इस अंधकार के पर्दे में दुनिया की दुश्मनी मुँह बाए खड़ी है।

सोफ़ि०—खड़ी रहने दो, मैं उसे नहीं डरती। इस वन के बाहर तो दुश्मनी की और भी विकराल, विशाल मूर्ति देख पड़ती है ! वह तो विश्वास के क़िले को तोड़कर

वे खटके सो रहे को लील लेना चाहती है ! तो फिर इस जंगल में फिरना क्या बुरा है ? अगर यहाँ दुशमनी है, तो उसे रहने दो। वह चाहे ढेर का ढेर हो, पहाड़ इतनी हो, पृथ्वी भर में व्याप्त और आकाश भर में फैली हो, मैं उसे नहीं डरती।

ख़ाँज०—यह क्या शक्ति की झूठी झलक है ! मैं शक्ति का कंगाल हो रहा हूँ, इसीसे क्या इस कोमल कमल में बिजली की तड़प देख रहा हूँ ?

सोफ़ि०—मेरे कहने पर विश्वास नहीं होता ! अच्छा मेरी जाँच कर लो। लड़की से अगर युद्ध करने में शर्म की बात हो तो मैं तुम्हारा हाथ पकड़ती हूँ; आजमाकर देखो, मुझमें ताक़त है या नहीं। (हाथ पकड़ती है)

ख़ाँज०—छोड़ दो, बेटी—बेटी छोड़ दो। समझ गया, तुम शक्ति से ढली हुई हो। वज्र से तुम्हारा शरीर बनाया गया है। मैं इस वृद्ध और भूख-प्यास से शिथिल शरीर में वह शक्ति कहाँ से लाऊँ ?

सोफ़ि०—देखो, अगर तुम भूखे हो तो ये फल लो, और अगर प्यासे हो तो बताओ, मैं झरने से पानी ले आऊँ। अगर मरने से डरते हो, तो देखो, यह तेज़ धारवाली कुल्हाड़ी लिए, होशियारी के साथ, तुम्हारा पहरा दूँगी—तुमको बचाऊँगी।

ख़ाँज०—क्षमा करो देवी !—जाओ बेटी ! मैं प्राणों

को बचाने के लिये प्रार्थना नहीं करता !

सोफ़ि०—तो चली जाऊँ ?

ख़ाँज०—हाँ बेटी। तुझसे प्राण बचाने में सहायता लेकर मैं संसार में क्या मुँह दिखाऊँगा ?

(सोफ़िया का प्रस्थान)

(ख़ुदादाद का प्रवेश)

ख़ुदा०—जहाँपनाह !

ख़ाँज०—ख़ुदादाद—ख़ुदादाद, एक महीने भर के लिये मुझे बचा सकते हो ? महीने भर के लिये न सही, सिर्फ़ पंद्रह दिन के लिये बचा सकते हो ? वह भी जाने दो, सात दिन—सिर्फ़ सात दिन बचा लोगे ?

ख़ुदा०—जहाँपनाह !

ख़ाँज०—न सही, एक दिन—बस एक दिन ! एक दिन जी पाऊँ तो 'जिन' की तरह उड़कर आगरे चला जाऊँ ! शैतानों का सहारा लेकर हिंदोस्तान की सल्तनत का रंग ही पलट दूँ !—बेटी, क्या नफ़रत करके चली गई !

ख़ुदा०—बेटी कौन जहाँपनाह ?

ख़ाँज०—मैं अब जहाँपनाह नहीं हूँ। राह का फ़क़ीर हूँ। तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ क्यों है ? यही तो कहोगे न कि मेरी आशा का आधार मेरा बेटा मुझे बचाने के लिये जिन शैतानों के हाथ हलाल हुआ है वे ही आ रहे हैं ! वह शोर-गुल हो रहा है ! वह सुनो, शैतान गरज रहे हैं !

उनके इस शोर के साथ मेरे वीर बेटे की आत्मा मेरे पास, मुझमें समाने के लिये आ रही है। मालवे के राज्य में सदा के लिये अंधकार करने—लोदी-वंश के चिराग़ को गुल करने—ये दुश्मनों की बलंद आवाज़ की लहरें इधर आ रही हैं। खुदादाद, अगर मुझे बचा सकते हो तो आओ। नहीं, अब किसलिये ? मेरी मौत पास आ पहुँची है।

खुदा०—हुज़ूर, सारा दिन और सारी रात गुज़र गई है; आपने कुछ भी नहीं खाया-पिया ! बड़ी मुशकिल से ये कुछ जंगली फल आपके लिये खोजकर लाया हूँ।

ख़ाँज०—इस जीवन को क्या दुश्मन का क़ैदी बनाने के लिये बचाओगे ? अगर बचाना चाहते हो तो इस जंगल भर को उजाड़ कर फल लाओ, जिसमें इस जीवन की अभिलाषाओं की माप से पेट भरकर खाऊँ। नहीं तो अब क्यों वृथा बचाने की कोशिश करते हो ? हृदय की ममता के रस से भरा अपूर्व सुंदर फल हाथ में पाकर मैंने दूर फेंक दिया है। जीवन की इस प्यास को मिटानेवाली सिर्फ़ एक दवा है। तुम मालिक के ख़ैरख़्वाह नौकर हो। तुम अगर दया करके वह दवा मेरे मुँह में डाल दो तो मैं सब दुखों से छुटकारा पा जाऊँ।

खुदा०—क्या दवा है वह जहाँपनाह ?

ख़ाँज०—सुनो ख़ुदादाद, दुनिया में अगर तरक़्क़ी और बढ़ती चाहो तो शैतान बन जाओ। नेकी से कुछ न होगा, बदी का सहारा लो।

ख़ुदा०—यह क्या आप कह रहे हैं जहाँपनाह!

ख़ाँज०—बस, शैतान बनो। यह तरवार मेरी छाती में घुसेड़ दो। मैं मालिक हूँ, यह ख़याल छोड़ दो। मुझे मारने से अभी हिंदोस्तान की बादशाहत तुमको मिल जायगी। शैतान की उँगली के इशारे पर यह संसार चल रहा है। जो जितना बड़ा शैतान है उसकी वैसी ही तरक़्क़ी होती है। सुनो ख़ुदादाद, ईमान के ख़याल ने ही मेरा सब खो दिया!—मैं सच कहता हूँ, ईमान के ख़याल ने ही मेरा सब खो दिया! बेटा, बेटी, बेगम, इज़्ज़त—सब गया। हिंदोस्तान में सब से बढ़कर वीर होने का घमंड भी मेरा चूर हो गया। कुछ न खाने-पीने से इस समय मैं मृत-सा हो रहा हूँ। एक लड़की ने अभी न-जानें कहाँ से आकर मुझे हरा दिया!

ख़ुदा०—कौन लड़की जहाँपनाह?

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

ख़ाँज०—कौन लड़की? शक्ति की पुतली थी वह। मनोहर मीठी आवाज़ से अभय देकर सहायता करने आई थी। मेरे नामंज़ूर करने पर वह उदास होकर चली गई। (फिर नेपथ्य में कोलाहल होता है)

ख़ुदा०—जहाँपनाह, मामला कुछ समझ में नहीं आता। धीरे धीरे यह शोर-गुल इसी तरफ़ बढ़ता आता है। जान पड़ता है, दुशमन को पता लग गया। अब छिप जाने की ज़रूरत जान पड़ती है।

ख़ाँज०—वह सुनो, फिर! फिर! बड़े बड़े महा युद्ध के सागरों में पहाड़ की तरह सिर ऊँचा रखकर अंत को इस गऊ के पैर के गढ़े में बुल्ले की तरह लीन हो जाऊँगा? यह न होगा—यह कभी नहीं मैं होने दे सकूँगा। पहाड़ चूर हो जायगा, तो क्या ब्रह्मांड भर को हिला देनेवाला भयानक शब्द नहीं होगा? लड़की, तू कहाँ है? आ बेटी, आ बेटी शक्तिरूपिणी! मैंने तुझे लौटा दिया—तू नाराज़ होकर चली गई! आ—लौट आ! तेरे दिए हुए प्राणों को बचाकर, तेरी दी हुई शक्ति अपने शरीर में धारणकर, एक दफ़ा शैतान की फ़ौज का मुक़ाबिला करूँगा। देखूँ, कुछ कर सकता हूँ या नहीं।

ख़ुदा०—जनाबआली, धीरे धीरे। हाय ईश्वर! नवाब की यह दशा देखने के लिये एक मैं ही बच रहा! धीरे—जहाँपनाह धीरे। (एक फ़ौजी सरदार का प्रवेश)

सरदार—अब धीरे धीरे की कोई ज़रूरत नहीं—लोदी, आत्मसमर्पण करो।

ख़ाँज०—तुम कौन हो? महाबतख़ाँ?

सर०—एक तुच्छ लोमड़ी को पकड़ने के लिये मुग़ल

सेना के सेनापति नहीं आते ! मैं आया हूँ।

ख़ाँज०—मेरे आगे ऐसी बातचीत करनेवाले तुम कौन हो ?

सर०—मैं अपना नाम बताने नहीं, तुमको पकड़ने आया हूँ। तुम अपने यही अहोभाग्य समझो कि मैंने तुम्हारा अपमान नहीं किया। अब मालवे का सपना देखना छोड़ो—पैरों में बेड़ियाँ पहनो।

(नारायणराव और उनके साथियों का प्रवेश)

नारा०—सपना तू देख बेईमान पाजी। बुड्ढे नवाब को अकेला और शिथिल पाकर कुवचन कह रहा है ! कंबख़्त ! जहाँ ख़ाँजहाँ लोदी हैं वहीं उनका मालवा है !

(सोफ़िया और भीलों का प्रवेश)

सोफ़िया—ठीक, वहीं उनका मालवा है ! आगरे के दरबार में एक दफ़ा तुम गीदड़ों ने मालवे की मूर्ति देखी थी; आज फिर इस सूनसान जंगल में नवाब ख़ाँजहाँ लोदी का मालवा देख।

नारा०—सरदार, इस कंबख़्त को गिरफ़्तार करो।

सोफ़िया—ना, मेरे सरदार, तुम इस पाजी को गिरफ़्तार करो।

मुग़ल सरदार—हाय अल्ला ! यह क्या हुआ !

नारायण का साथी सरदार—ख़बरदार, हम गिरफ़्तार करेंगे।

भील सरदार—हमारे सामने तू कौन गिरफ़्तार करने-वाला है रे !

नारा०—तू कौन है ?

सोफ़ि०—तुम कौन हो ?

(बनावटी वेष में दादाजी का प्रवेश)

दादा०—तुम लोग कौन हो ? अच्छा अच्छा ! एक ओर ख़ाँजहाँ हैं, दूसरी ओर मालवा है, बीच में आगरे का नगाड़ा है ! भाई, शहरुए मालवा और दिहाती मालवा में इस नगाड़े के लिये इतना झगड़ा क्यों है ? इस बहादुर मुग़ल-सरदार की सारी बहादुरी इसे फेर दो और सीधी राह दिखा दो। उसके बाद दोनों दल मिलकर बादशाह की सेना का इधर आना रोकने की कोशिश करो । बादशाह की सेना क़तार बाँधकर इस घाटी के भीतर घुस रही है । जा भीलों की रानी ! यह नौजवान राह नहीं जानते; इन्हें घाटी का मोहरा दिखा दे—

(दादाजी का प्रस्थान)

नारा०—रानी—आओ राह बता दो।

सोफ़ि०—चलो, बता दूँ ।

नारा०—मैंने अभी तक तुमको देखा नहीं था ! तुम कौन हो रानी !

सोफ़ि०—कौन हूँ, यह बताने के लिये समय नहीं है—मुँह की ओर ताकने का मौक़ा नहीं है । अगर मनुष्य

होने का अभिमान रखते हो, अगर बहादुरी का दावा रखते हो, अगर ब्राह्मण होने का ख़याल रखते हो, तो जल्द आओ—देर मत करो।

नारा०—चलो।

(ख़ुदादाद और ख़ाँजहाँ के सिवा सबका प्रस्थान)

ख़ाँज०—ख़ुदादाद, मेरा हाथ पकड़ लो। इस जंगल में किसी पेड़ के नीचे अपने स्वामी को हाथ भर जगह की भीख दो।

ख़ुदा०—जो आज्ञा स्वामी !

(दोनों का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—जंगल का दूसरा हिस्सा

ख़ुदादाद और ख़ाँजहाँ

ख़ुदा०—स्वामी, इस पेड़ के नीचे बैठिए।

ख़ाँजहाँ—दो, बिठा दो। आँखों के आगे जैसे पर्दा पड़ा जा रहा है—कुछ सूझ नहीं पड़ता। अच्छा हुआ ख़ुदादाद! इस समय मुझे अगर कोई क़ैद करने आवे तो उस अपने क़ैदी होने को मैं देख न पाऊँगा।—लेकिन ख़ुदादाद, मुझे बचानेवाला यह कौन था!

ख़ुदा०—कौन था, सो मैं बता नहीं सकता।

ख़ाँजहाँ—देखा था?

ख़ुदा०—जी हाँ, देखा था।

ख़ाँजहाँ—कुछ पूछ नहीं सके?

ख़ुदा०—पूछा था, लेकिन उसने कुछ नहीं बताया।

ख़ाँजहाँ—ख़ुदादाद, तुम अब क्या करोगे?

ख़ुदा०—आप अगर आज्ञा दें तो मैं अभी जाकर उस जवान की सहायता करूँ।

ख़ाँजहाँ—ठीक, तुम अभी जाकर उसकी सहायता करो।

ख़ुदा०—जहाँपनाह, आपको कहाँ बिठा जाऊँ?

ख़ाँजहाँ—क्यों ? जिसने पैदा होते ही अपनी गोद में जगह दी थी उसी मा धरती की गोद में मुझे छोड़ जाओ। उसकी गोद बड़ी ही ठंडी और बहुत ही कोमल है। वहीं छोड़ जाओ।

ख़ुदा०—जहाँपनाह !

ख़ाँजहाँ—ख़ुदादाद, आओ एक दफ़ा ज़रा तुमको देख लूँ। ख़ुदादाद ! यह क्या भाई ! तुम मुझसे भी बढ़कर कमज़ोर हो रहे हो ! तुम्हारा शरीर काँप रहा है ! तुमने छः-सात दिन से कुछ भी नहीं खाया-पिया ?

ख़ुदा०—दोहाई है जहाँपनाह ! कमज़ोरी की याद न दिलाइए ! नहीं तो यहीं गिरकर मर जाऊँगा। मैं भूख-प्यास सब भूला हुआ था—जहाँपनाह, ऊपर वह दुनिया का मालिक है और नीचे आप मेरे स्वामी हैं। (प्रस्थान)

ख़ाँजहाँ—वज्र गिरकर मुझ अधम पापी के सिर के टुकड़े टुकड़े कर दे ! शाहजहाँ! तुम किसे मारने के लिये इतने व्याकुल हो रहे हो ?—इतनी कोशिश कर रहे हो? देख जाओ दिल्लीपति ! शानदार घमंडी तुम्हारे पटैत ख़ाँजहाँ का राज्य आज इस पेड़ के तले रह गया है ! वह आज अपने पहले का सब घमंड और शान भूल गया है ! सारा अभिमान छोड़कर आज वह धूल में—मौत के द्वार पर—पड़ा हुआ है ! अनाहार, अनिद्रा, निराशा आदि से घिरा हुआ मैं आज बड़े सुख में हूँ। यह धरती

ही मेरा राज्य है। मैं ही राजा हूँ —मैं ही प्रजा हूँ। मैं ही आप अपने को मारनेवाला हूँ। मैं ही फ़क़ीर हूँ—मैं ही दाता हूँ। मैं ही पुत्र हूँ—मैं ही पिता हूँ। हरएक मनुष्य रंक है। राजा भी नंगा और ख़ाली हाथ इस पृथ्वी पर आता है—और इसी दशा से यहाँ से जाता है। फिर काहे का घमंड किया जाता है? यह दुनिया और दौलत किसके साथ आई है और किसके साथ जायगी? इस दुनिया में जीना ही कितने दिन होता है? जन्म के साथ ही मौत भी पैदा होती है। मौत के साथ ही जन्म भी लगा हुआ है। यह जन्म और मौत का फेर ही जीव को एक बड़े चक्कर में डाले हुए है। यह जीवन धूमकेतु के समान ऊपर से प्रकाशमय और भीतर से सारहीन है। इसके भीतर दुःख ही दुःख भरा हुआ है। इस जीवन का सारांश दुःख ही है, क्योंकि दुःख में मनुष्य को दिव्य दृष्टि मिलती है और सुख में वह अंधा हो जाता है।

नेपथ्य में—मालवेश्वर, अगर जीते हो तो बोलो।

(दादाजी और सोफ़िया का प्रवेश)

ख़ाँजहाँ—किसकी आवाज़ सुन रहा हूँ? क्या रज़िया क़ब्र से उठकर आई है?

सोफ़िया—(दादाजी से) दादाजी, अब क्या करना चाहिए? नवाब इस समय बेहोश से हो रहे हैं। मुझे अपनी लड़की समझ रहे हैं।

दादा०—तुम भाग्यवती हो ! मैं क्या बताऊँ ? तुम आप स्वाधीन हो—आप अपनी मालकिन हो । तुम्हारे साथ रहकर मैं भी अपने को भाग्यशाली समझता हूँ। राजा जैसे अपने इच्छानुसार उठता-बैठता, आता-जाता और सब काम करता है वैसे ही आज से तुम भी स्वतंत्र हो। जो जी चाहे करो, ईश्वर तुम्हें कर्तव्य की राह दिखावेंगे।

ख़ाँजहाँ—कहाँ—कहाँ गई रज़िया ? अपने मीठे बोल सुनाकर कहाँ गई ? तू क्या मुझे देखकर नाराज़ होकर चली गई ? तुझे छोड़कर मैं चल दिया था, इसीसे क्या तू भी मुझे छोड़कर चल दी ?

सोफ़िया—पिता !

ख़ाँजहाँ—पिता ! पिता कहकर पुकारने के लिये क्या अब भी तेरा जी चाहता है ? पिता होकर मैंने जो तेरे साथ सलूक़ किया उसे क्या तू भूल गई बेटी ? पास आ—पास आ। बेटी ! बेटी ! बापकी ममता के मारे अगर मौत का बंधन तोड़कर यहाँ आई है तो मेरे पास आ ! आज मैं एक फ़क़ीर की हालत में हूँ; इसीसे क्या तू मेरे पास आने में सकुच रही है ? शर्म क्या है रज़िया ? मालवे के महल की रोशनी ! मेरा सर्वस्व ! तू ही अब मेरा बेटा और बेटी है ! बेटी बेटी ! अपने हाथों से मैंने जिनको क़ब्र में रक्खा है वे सब क्या एक एक करके लौटे आ रहे हैं ? सदा आनंदमयी वह तेरी मा भी क्या बाँदियों के साथ यहाँ

आ रही है ? दृष्टि क्या स्वर्ग का सपना देख रही है ? कान क्या उस दिव्य स्वर्गलोक के निवासियों की मीठी आवाज़ सुन रहे हैं ? क्या मैं पागल होगया हूँ ? बोल बेटी रज़िया, तू सचमुच रज़िया है ? या उस स्वर्गवासिनी की पवित्र आत्मा मुझे शांति देने के लिये दौड़ी आई है ?

दादाजी—पागलपना—पागलपना—नवाब ! अगर यह पागलपना है—जो पागलपन स्वर्ग के फूल चुनकर माला गूँधकर गले में पहनाता है, जिससे दमभर में दुनिया के सब दुख दूर हो जाते हैं—मौत का कष्ट भूल जाता है, वह अगर पागलपन है तो ज्ञान और किसे कहते हैं ? नवाब, यह अपना पागलपन क्या मुझे भीख दे सकते हो ?

ख़ाँजहाँ—तुम कौन हो भाई ?

दादा०—मैं कौन हूँ, सो बताया नहीं जाता। मैं जो कहना चाहता हूँ उसे ज्ञान का अभिमान कहने नहीं देता। मैं कौन हूँ, यह जानने की तुम्हें कुछ ज़रूरत भी नहीं है। मैं छाया की तरह बहुत दिन से इस बालिका के पीछे पीछे घूम रहा हूँ। तुम अपने प्यारे बंधुओं को क़ब्र में सोया हुआ जानकर निश्चिंत थे, मगर मैं निश्चिंत नहीं हो सका। बालिका का जीते-जी दफ़न होना देखकर मेरा हृदय काँप उठा था। इसीसे साथ साथ परछाँही की तरह यहाँ तक आया हूँ। इतनी दूर आकर तुम्हारे पागलपन के प्रकाश में आज वह परछाँही

बिला गई ! लो नवाब, लो—अपनी लड़की लो। संसार में तुम हो और तुम्हारी बेटी है—दोनों के बीच में स्वर्ग का सुख देनेवाला तुम्हारा पागलपन है ! वहाँ परछाहीं के ठहरने की जगह नहीं। सलाम नवाब साहब, सलाम नवाबज़ादी। (प्रस्थान)

ख़ाँजहाँ—वही तो, रज़िया, तू आ गई ? क़ब्र तोड़कर, मा की गोद से उठकर, मिट्टी के ढेर से—घने अंधकार से, क्या मुझे बचाने के लिये—सुख की मौत मरने देने के लिये क्या तू यहाँ आई है ? रज़िया—रज़िया ! अपना कहनेवाला कोई न देखकर मैं अब तक मौत को बुला रहा था। मौत दरवाज़े पर आ गई है—उसकी मूर्ति बहुत ही शांत है। इस समय अगर उससे लौट जाने के लिये कहूँ तो फिर तो वह ऐसा शांतरूप रखकर आवेगी नहीं। क्या करूँ ? किसके हाथ में तुझे सौंप जाऊँ ?

सोफ़िया—पिता ! पिता ! मौत के हाथ में मुझे सौंप दो। पिता ! तुम्हारी यह दशा मुझसे नहीं देखी जाती ! तुम्हारी यह दशा देखना मौत से भी बढ़कर कष्ट देता है।

ख़ाँजहाँ—अच्छा आ, तुझे मौत के ही हाथ में सौंप जाऊँ। अपने हाथ से मरकर, बेटी, तूने शांति नहीं पाई; अबकी तुझे मैं निर्भय, शांतिमय मौत को सौंप जाऊँगा।

(दोनों का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—जंगल का एक हिस्सा

शाहजहाँ

शाह०—बदला लेने की धुन में बुड्ढे ख़ाँजहाँ का पीछा करते करते इतनी दूर आकर अब देखता हूँ कि मैंने बड़ी ही बेवकूफ़ी का काम किया। मेरे हितचिंतक मित्र महाबतख़ाँ और आजफ़ दोनों के बार बार मना करने पर भी इस बीहड़ जंगल में मैं चला ही आया। अब यहाँ राह नहीं मिलती। हितुओं की बात न मानने का फल हाथोंहाथ मुझे मिल गया। ख़ाँजहाँ का पता तो नहीं लगा, उलटे इस सूनसान भयानक जंगल में राह भूलकर आप ही अपने को फँसा दिया। ठीक हुआ। अपनी प्रबल पराक्रमी मुग़ल-सेना के बीच में रहकर इस समय मैं निराश्रय हो रहा हूँ! उस मेरी सेना के सागर की एक लहर घड़ी भर में सारे मालवे को डुबा दे सकती है। मगर मैं मूर्ख उस सागर को 'बाँध' से बाँधकर सूखे तालाब में जान देने क्यों आया? ठीक हुआ। अपने किए की सज़ा मिल गई। मेहमान मेरे बुलाने से मेरे घर आया था—आकर उसने मुझसे मोहब्बत का

बरताव चाहा था। मैंने उसके बदले में उसे ऐसी दुर्गति दी। ठीक हुआ। यही मेरे लायक़ सज़ा है। मुट्ठी भर गँवार भीलों के हाथ से आज इतने बड़े हिंदोस्तान के बादशाह की यह दुर्दशा हुई। यही मेरे काम की ठीक सज़ा है।

(नेपथ्य में "जय मालवेश्वर की" का कोलाहल सुन पड़ता है)

शाह०—पागल सी हो रही पठानों की सेना जंगली जानवर की तरह मेरा शिकार करने के लिये मेरी ओर बढ़ी चली आ रही है। मुग़लों की सेना घाटी की राह साफ़ करने भी न पावेगी, इसी बीच में दुशमन के सिपाही आकर बेदरदी के साथ मेरी बोटियाँ काट डालेंगे। साधारण सिपाहियों के मुक़ाबिले खड़े होकर—हथियार उठाकर—अपने को बचाने की कोशिश करना हिंदोस्तान के बादशाह की बेइज़्ज़ती नहीं तो और क्या है? नहीं, बस हो चुका—अब मैं अपने को बचाने की कोशिश नहीं करूँगा।

(शाहजहाँ का तरवार फेंक देना। नारायणराव का प्रवेश)

नारा०—या तो क़ैदी बनिए और या अपना आख़री समय जानकर ईश्वर को याद कीजिए।

शाह०—तुम कौन?

नारा०—पहचानते नहीं, चींटी हूँ। लेकिन बादशाह, एक दिन ऐश्वर्य के ऊँचे आसन पर बैठकर आपने चींटी समझा था; आज धरती पर खड़े होकर देखिए, भाग्यचक्र के फेर से उसी चींटी में काटने की शक्ति आ गई है।

तैयार हो जाइए। मैं आपको क़ैद करके अपने स्वामी के पास ले जाऊँगा।

शाह०—पाजी गुलाम, दम रहते मैं क़ैदी नहीं बनूँगा।

नारा०—क्षमा कीजिएगा बादशाह, तो मैं आपकी लाश को अपने स्वामी के पास ले जाऊँगा।

(तरवार तानता है। वैसे ही महाबतख़ाँ आकर तमंचा दागकर नारायणराव को ज़मीन पर गिरा देते हैं)

शाह०—कौन—किसने मुझे बचाया ?

महा०—चले आइए जहाँपनाह, अब आपको कुछ खटका नहीं है। (ख़ाँजहाँ को लिए सोफ़िया का प्रवेश)

सोफ़ि०—ना ना, कौन कहता है—खटका नहीं है ? बादशाह, जीवन की आख़री घड़ी तक आफ़त तुम्हारे साथ साथ घूमेगी।

महा०—ओफ़ ! यह कैसा शोचनीय दृश्य है !

सोफ़िया—पिता—पिता—मालवे के मालिक ! यह सामने बेईमान दुशमन खड़ा है। तरवार लो, मरते दम एक बार तरवार लो। एक बार अपने हाथों में पहले का बल बुला लो। मेरी माता और भाई के मरने का बदला लो।

ख़ाँजहाँ—कहाँ, कहाँ है बेटी, कहाँ है ? निर्जन वन में मौत के मुँह में हूँ ! तो भी—तो भी—बदला—बदला—बदला !

(शाहजहाँ के शरीर में तरवार छुआकर गिर पड़ता है और मर जाता है)

शाह०—उठो वीर, उठो ! जागो ! मेरे सिर के दो टुकड़े कर डालो। इस तीव्र बदले की जलन जी में लेकर मैं आगरे में मुँह नहीं दिखा सकूँगा। (दादाजी का प्रवेश)

दादा०—वाह वाह ! महामाया के उँगली के इशारे से आज संसार का सब प्रचंड अभिमान यहाँ चूर हो गया !

सोफ़ि०—उठो स्वामी, उठो नारायणराव !

नारा०—कौन शिला, आ गए ?

सोफ़िया—शिला नहीं, चरणों में तुम्हारी सोफ़िया पड़ी है।

नारा०—सोफ़िया—सोफ़िया—कहाँ की कौन सोफ़िया ? शिला—शिला ! सोफ़िया उमराव की लड़की है ! बोलो बालक ! तुमको मैंने अपना सब कुछ अर्पण कर दिया है—बताओ, वह क्यों मेरे पैरों में गिरेगी ?

सोफ़िया—लोभ, लोभ। स्त्री-जाति का लोभ और ईर्षा बड़ी प्रचंड होती है। नाथ, तुमने उस बालक को सर्वस्व दे डाला। इसीसे स्वामी, मेरे हृदय में ईर्षा हो रही है। अब नाम का भेद नहीं सहा जाता। एक बार मुझे दासी कहकर पुकारो। अब मैं वह अभिमानिनी मुसलमानी नहीं हूँ। मेरा सब घमंड बहुत दिन से जाता रहा है। अपने दासीपन का राज्य मुझे दो।

नारा०—समझ गया सुंदरी ! समझ गया प्रिये ! वह चित्र आँखों के आगे घूम रहा है ! वह मीठी वाणी कानों

में गूँज रही है। आओ शिला, आओ सोफ़िया, मेरे पास आओ। दम भर के इस मिलन से अगर तुमको संतोष मिले तो अपने कोमल हाथ लाओ; मैं अपना जीवन तुमको अर्पण कर दूँ। तुम दासी हो ? नहीं, तुम मेरा सर्वस्व—मेरी प्राणेश्वरी हो। प्रजापति ! तुम साक्षी रहो ! बादशाह ! तुम साक्षी हो ! यह साक्षात् निष्काम प्रेम की मूर्ति मेरी हृदयेश्वरी है। मोहिनी !—सोफ़िया ! तुम दासी नहीं—मुझे मनुष्यत्व का पाठ पढ़ानेवाली पुण्यरूपिणी प्राण-प्रतिमा हो ! देवी ! अगर तुम मुसलमानी हो, तो मैं भी मुसलमान हूँ ! अगर तुम ब्राह्मणी हो, तो मैं भी ब्राह्मण हूँ। (मृत्यु हो जाती है)

महा०—उदार ब्राह्मण, मैं ज्ञानहीन और अपना धर्म छोड़ देनेवाला हूँ। मेरा दान तुम्हें नहीं सोहता। मैं भिक्षा माँगता हूँ, इस मुसलमानी को अपने प्रभाव से ब्राह्मणी बना लो।

सोफ़ि०—दादाजी, सिसोदिया वंश की बालिका आज विधवा है। उसे क्या करना चाहिए ? आज्ञा कीजिए।

दादा०—(हाथ जोड़कर) मैया ! तुम सती हो ! सती का कर्त्तव्य सब तुम जानती हो ! तुम्हें मैं मूर्ख क्या बताऊँगा ? तुम स्त्री-जाति का गौरव हो। तुम परम पतिव्रता हो। मुझसे यह प्रश्न क्या करती हो ? मैं अज्ञानी तुमको क्या उपदेश करूँ ? मैं पुण्य का मंदिर

तोड़ ने आया था, पर ईश्वर ने उसकी रचना मेरे हाथों से करा दी। तुम गंगा से बढ़कर पवित्र और सावित्री से बढ़कर प्रातःस्मरणीया हो! तुम्हारे गुणों का बखान करके जगत् के नर-नारी धन्य होंगे।

सोफ़ि०—सुना है, हिंदू-घराने की सती स्त्रियाँ, स्वामी के मरने पर—चिता पर बैठकर, स्वामी के साथ स्वर्ग की यात्रा करती हैं। अगर मैं हिंदू-कुल की स्त्री होती तो मुझे आपसे पूछने की ज़रूरत नहीं थी। लेकिन मैं मुसलमानी हूँ। मेरे छूने से कहीं स्वामी का परलोक न बिगड़ जाय—इसीसे डरकर आपसे पूछती हूँ।

दादा०—तुम मुसलमानी हो? तुम्हारे छूने से ब्राह्मण का परलोक बिगड़ेगा? तुम सीता, सावित्री, सती हो! तुम गंगा और गीता से बढ़कर पवित्र हो! तुम ब्राह्मणी हो! तुम धन्य हो!

सोफ़ि०—तो उठो—मेरे लिये चिता तैयार करो।

पर्दा गिरता है